भूमिका ।

इस श्री सुकुमाल चरित्र मूल संस्कृत ग्रन्थ की श्लोक संख्या ११०० है, मूल ग्रन्थ रचिता श्री सकल कीर्ति आचार्य हैं, भाषा वचनिका सम्वत् १९१८ में जयपुर नगर विषे पंडित नाथूलालजी ने लिखी है, उस वचनिका को मध्य देश भाषा में अतिसुगम कर बाबू ज्ञानचन्द्र जैनी ने सम्वत १९६७ विषे लाहौर नगर में छपवाई है ॥

अथ भाषा वचनिका कर्त्ता पंडित नाथूलाल की ओर से।

चौपई—अर्हंत सिद्ध सूर उवझाय । साधु भारती गण समुदाय ॥
जैन धर्म सब मंगल रूप । मंगल दायक होहु अनूप ॥ १ ॥

दोहा—आदि अन्त मंगल करो, श्रीवृषभांक जिनेश ॥
जैन धर्म जिन भारती, हर संसार कलेश ॥ २ ॥

सवैया—ढुंढाहड़ देश मध्य जैपुर नगर सोहै । चारों वर्ण राह चलैं आपनों सुधर्म को ॥
रामसिंह भूपति के राज मांहि कमी नांहीं । कमी कछु दृष्टि परै मानों निज कर्म की ॥
वैश्य कुल जैनी को पूर्व कृत पुण्य थकी । पायो यह खोलो अब मुदी दृष्टि भर्म की ॥
जैन बैन कान सुनो, आतम स्वरूप मुनो । चारों अनुयोग भनो यही सीख मर्म की ॥ ३ ॥

चौपई—दोशी गोत दुलीचंद नाम । ताको सुन शिवचंद अभिराम ॥

नाथूलाल तास सुत भयो । जैनधर्म को शरणो लयो ॥ ४ ॥
श्रीदिवाण संग ही अमरेश । पाय सहाय पढ्यो श्रुतलेश ॥
कासालवाल सदासुख पास । फिर कीनो श्रुतको अभ्यास ॥ ५ ॥
श्री सुकुमाल चरित्र रसाल । देखि कही हरचन्द गंगवाल ॥
होय वचनिकामय जो येह । सब ही जन वांचे हित गेह ॥६॥
बिनव्याकरणपढ़ेनहिं ज्ञान । मूलग्रन्थको होय निदान ॥
ऐसे प्रार्थन तने बसाय । मूलग्रन्थका पाय सहाय ॥ ७ ॥
भावारथसौं लिखियो येह । देश वचनिका मय धरि नेह ॥
पांचों पढो पढावो सुनो । आतम हित कूं नीके मुनो ॥ ८ ॥
जो प्रमादवस तैं कछु यहां । भोलपने से मैंने कहा ॥
सो सब मूलग्रन्थ अनुसार । करियो बुधजन सुष्ठू विचार ॥ ९ ॥
उनवीस शत ठारह सार । सावण शुदि दशमो गुरुवार ॥
पूरण भई वचनिका येह । वांचों पढो सुनो धरि नेह ॥ १० ॥
दोहा—मंगलमय मंगल करण,वीतराग चिद्रूप ॥ मन वच तनकरि ध्यावते,होहे त्रिभुवन भूप ॥ ११ ॥

ओंनमः सिद्धेभ्यः ॥ ओंकारं विन्दु संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः कामदंमोक्षदंचैव ओंकारायनमोनमः ॥ अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित सकलभूतल कलङ्का मुनिभिरुपासिततीर्थां सरस्वती हरतुनोदुरितम्। अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया चक्षुरुन्मीलितंयेनतस्मै श्रीगुरवेनमः। परमगुरुभ्योनमः। परम्पराचार्य्यगुरुभ्योनमः। सकल-कलुषविध्वंसकं श्रेयसांप्रवर्द्धकं धर्म्मसम्बन्धकं भव्यजीवप्रतिबोधक मिदं शास्त्रंश्रीसुकुमालचरित्रंनामधेयं। अस्यमूलग्रन्थकर्त्तारःश्रीसर्व्व-ज्ञदेवाः।तदुत्तरग्रंथकर्त्तारःश्रीगणधरदेवाः।प्रतिगणधरदेवास्तेषांवचो-नुसारमासाद्यकर्त्ताश्रीसकलकीर्त्याचार्य्येण विरचितम्।

मङ्गलं भगवान्वीरो मङ्गलंगौतमोगणी। मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्याः। जैनधर्म्मोस्तु मङ्गलम् ॥ श्रोतारःसावधान तयाशृण्वन्तु।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अथ श्रीसुकुमालचरित्र भाषा।

(सकल कीर्ति आचार्य्यकृत)

मंगलाचरण।

नमः श्रीविश्वनाथाय, पञ्चकल्याणभागिने।
महते वर्द्धमानाय, नित्यानंदगुणाब्धये ॥

(मंगलाचरण का खुलासा अर्थ)

मैं जो सकल कीर्ति नामा आचार्य्य हूं सो श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर के ताईं नमस्कार करूं हूं कैसे हैं श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर श्रीविश्वनाथाय कहिये शोभायमान तीन लोक के स्वामी हैं अथवा स्थावर जंगम सकल जीवों के ईश्वर हैं और पंच कल्याणभागिने–कहिये गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, और निर्वाण ऐसे पंचकल्याणक विषे जिनको इंद्रादिक देव सेवे हैं, महते कहिये सबों के पूज्य हैं,

अथवा चतुर्विध संघ विषे महान श्रेष्ठ हैं, और नित्यानंदगुणाब्धये–कहिये शाश्वते आनंदरूप जे अनतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य, आदि अनन्तानन्त गुण उनके समुद्र हैं ॥

भावार्थ–तीन भुवनकेस्वामी, पंचकल्याणकके नायक, अनंत गुणोंके समुद्र, जोअंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान कर प्रकाश्या हुआ जो सत्यार्थ धर्म, सो कैसा है वह धर्म तीन जगतकी लक्ष्मी, और सुखकी खान, और इस पंचमकाल विषे मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाओंकर आचरणकिया हुआ प्रवर्त्तेहै, और पंचमकालके अंत पर्यंत रहेगा॥ और जिन्होंनेवचन रूप किरणों कर सर्वथा एकांत मतरूप जो अज्ञान सोई भया अंधकार का समूह उसे मूल से उच्छेद कर भव्य जीवों को मोक्षकी प्राप्ति के अर्थ रत्नत्रय रूप मुक्ति का मार्ग प्रकट दिखाया, और श्री कहिये शोभायमान सम्यग्ज्ञानकी वृद्धिसे देवों ने जिनका वर्द्धमान नाम प्रसिद्ध किया, और अंतरंग विषे क्रोधादिक वैरियों के जीतने से वीर अथवा महावीर ऐसा नाम पाया, और स्वयं कहिये परोपदेश बिना आपही आप सत्यार्थ मार्ग को जाना, इससे सन्मति ऐसा नाम कहाया, इस प्रकार वर्द्धमान, वीर, महावीर, सन्मति इन चार नामके धारक, धर्म रूप चक्रवर्तिपद के नायक, त्रिजगत पूज्य अंतिम तीर्थंकरको मैं नमस्कारकरूं हूं, और जो भगवान् शुक्लध्यान रूप खड्गकर वरजोरी से घाति कर्म रूप वैरी को नाश कर लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान को पाय चतुर्थ काल की आदि विषे भोले भव्य पुरुषों के कल्याण की सिद्धि के अर्थ मुनि श्रावक के भेद कर दो प्रकार

धर्म दिव्य ध्वनिकर उपदेशा ऐसा जो प्रथम तीर्थंकर श्रीवृषभदेव उसे नमस्कार करूं हूं, सो कैसा है वह धर्म ? स्वर्ग मुक्तिके सुख का दाता है, और अजितनाथ को आदि दे पार्श्वनाथ पर्यंत जे अवशेष बाईस तीर्थंकर हैं उनके चरण कमलों का सेवन करूं हूं, काहे के अर्थ ? तिन के अनत ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति के अर्थ, कैसे हैं वह २२ तीर्थंकर ? सर्व भव्य जीवों के हित विषे उद्यमी हैं, और इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिक कर वंदनीक पूजनीक अनंत गुणों के समुद्र हैं, और संसार से भयभीत जे भव्य जीव उनका शरण आधार हैं, और सर्व मंगल के कर्त्ता लोक विषे सर्वोत्तम हैं, और पूर्व पश्चिम विदेह विषे विद्यमान सीमंधरादि वीस तीर्थंकरोंके चरण कमलोंको मैं अपने हृदय विषे स्थापन करूं हूं, सो कैसे हैं वह भव्य जीवोंके मोक्ष सुखके अर्थ सत्यार्थ मार्ग को प्रवर्तावें हैं और अनंत गुणोंके समुद्र दिव्य ध्वनि कर मनुष्यों को तथा तिर्यंचों को संबोधे हैं, और त्रिकाल गोचर जे अनंत केवली हुए, आगे अनंतानंत होवेंगे, और वर्तमान विषे प्रवर्त्ते हैं, उन सर्व को स्तवू हूं, वंदू हूं, नमस्कार करूं हूं, काहे के अर्थ सारभूत आत्मज्ञानकी सिद्धि के अर्थ, और जो महान ध्यान रूप खड्ग कर कर्म नो कर्म रूप वैरियों का नाश कर, सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों कर सहित, और जिन्होंने मुक्ति रूप साम्राज्य पद अंगीकार किया, और लोक शिखर पर है आवास जिन का, इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर वंदनीक, ऐसे अनंत सिद्धपरमेष्ठीको सिद्ध गति कीप्राप्तिके अर्थ सदाकाल नमस्कार करूं हूं, और जो छत्तीस गुणोंकर सहित

और संसार समुद्र विषे भव्य जीवों के तारने को जहाज समान और परम उत्कृष्ट पंचाचार को मोक्ष के अर्थ आप आचरण करे हैं, और विनयवान शिष्यों को आचरण करावे हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी को पंचाचार की सिद्धि के अर्थ मैं नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं आचार्य परमेष्ठी? बिना हेतु सकल जीवों के उपकार करन हारे हैं, और जे ग्यारह अंग चौदह पूर्व रूप शास्त्र समुद्र को आप पार भये, और अन्य योगीश्वरोंको पारकरण हारे हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठीके चरणारविंद को समस्त श्रुत के लाभ के अर्थ और निर्वाण पद की प्राप्ति के अर्थ नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं उपाध्याय परमेष्ठी ? त्रिकालदर्शिनी प्रज्ञा जो बुद्धि सोई भया जहाज उसका है आश्रय जिनके, और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय अमोलिक धन उसके ईश्वर, और जो शीत काल विषे नदियों के तट पर, ग्रीष्म विषे पर्वत के शिखर ऊपर, और वर्षा काल में वृक्षों के नीचे, ध्यान धरते महान घोरवीर तप के धारण धर्म शुक्ल ध्यान कर निरंतर मोक्ष का साधन करते पर्वतों की गुफा विषे, दुर्गम स्थान विषे, वा निर्जन बन विषे, सिंह समान निर्भय तिष्ठे हैं, ऐसे जो सर्व साधु परमेष्ठी उनको मैं नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं वह साधु परमेष्ठी निरंतर आत्म हित विषे विद्यमान हैं, सो ऐसे यह पंचपरम गुरु ज्ञानी जनों कर वंदनीक स्तुति करने योग्य इस शास्त्र के आरंभ के सिद्धिके अर्थ मुझको अपने उत्कृष्ट गुण देवो, और जो महान कवितादि गुणोंकर परिपूर्ण, द्वादशांग श्रुत समुद्रके पार को प्राप्त भये, ऐसे जे गौतमादि

गणधर उन का आत्मीक बुद्धि के अर्थ ध्यान करूं हूं, कैसे हैं वह ध्येय कहिये ध्यायवे योग्य हैं, और जिनके प्रसाद कर काव्यों की रचना करने विषे समर्थ मेरी बुद्धि अति निर्मल भई, और चारित्र के आचरण विषे पवित्र भई प्रवीण भई ऐसी जिनेंद्र भगवान् के मुख कमल विषे निवास करने वाली जिनवाणी उसे मैं स्तवूं हूं, वंदूं हूं, नमस्कार करूं हूं, कैसी है वह जिनवाणी तीन जगतके जीवों को माता समान उपकार करनहारी है, और तत्त्वों के समस्त अर्थों की दिखावनहारी है, जिनेंद्र भगवान् की दिव्य ध्वनि से अर्थ रूप ग्रहण कर गणधर देवों ने जिन की अंग, पूर्व और प्रकीर्णक रूप रचना करी है, और प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि के धारक योगीश्वरों कर श्रुत केवलियों कर धारण किये जे सर्व अर्थ उनके प्रकाशक और जिनेंद्र भगवान् कर कहे सांचे अर्थ तिन कों ज्ञानादि गुण की प्राप्ति के अर्थ नमस्कार करूं हूं ॥ इस भांति अरहंत, सिद्ध, और केवली के भाषे द्वादशांग सिद्धांत, और आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु गणधर श्रुतकेवली आदि जे परम गुरु, इनको मंगल के अर्थि मैंने नमस्कार किया. स्तवन किया, प्रार्थना करी, कैसे हैं पंचपरमगुरु ? सर्व मंगलों के कर्त्ता और अपमंगलों के विनाशक हैं सो वह सर्व मंगल करो और मल जो पाप उसका नाश करो समस्त विघ्नों को दूर करो और शास्त्र के प्रारंभ की पूर्णता करो इष्ट की सिद्धि करो ॥

(यहां आचार्यने निर्विघ्न शास्त्रकी समाप्तिके अर्थ आदि विषे मंगलाचरण रूप नमस्कार किया है)

अब श्री महामुनि सुकुमाल को नमस्कार करे हैं।

अब मैं श्री महामुनि सुकुमाल का चरित्र वर्णन करने से प्रथम श्री सुकुमाल महामुनि को मन वचन काय कर नमस्कार करूं हूं, किस लिये नमस्कार करू हूं ? जो शक्ति सुकुमाल मुनि विषे भई सोई शक्ति कहिए सामर्थ्य मेरे विषे भी प्रकट होहु, इसलिये मैं श्री महामुनि सुकुमाल स्वामी को नमस्कार करूं हूं कैसे हैं। श्री महामुनि सुकुमाल महाधीर हैं और कामदेव समान मनोज्ञ रूपके धारक महापराक्रमी महा उत्तम वैश्य कुल विषे उत्पन्न भये और महा लक्ष्मी कर शोभायमान जगत विषे मानने योग्य महासाहसी और महाघोर उपसर्ग के जीतन हारे क्षायिक सम्यक्त्वआदि अनेक गुणों के समुद्र हैं और सुकुमाल वैश्य कुल रूप आकाश विषे सूर्यसमान उद्योतकारी भये और शिरसके फूलसमान अत्यंत कोमल है अंग कहिये शरीर जिनका महाघोर उपसर्गों के सहने को वज्रसमान अतिअभेद्य और इंद्रसमान दिव्य भोगों के भोगने वाले, सुख रूप समुद्रके मध्य प्राप्त भये और योग जो ध्यान उससे दुर्निवार सकल परीषहों के जीतनहारे श्यालनीकृत घोरउपसर्ग तीन दिनपर्यंत सहकर श्रीसुकुमाल मुनि समभावों से प्राण त्याग कर सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त भये ऐसे जो सुकुमालमुनि मैं उनका चरित्र कहूंगा और इसही चरित्र

के कहने कर सूर्यमित्र महामुनिके सिद्धांतों के पठनादिकों का जो फल प्रगट भया वह भी कहूंगा और इस ही ग्रंथके मध्य अग्निभूत वायुभूत आदि बहुत महान पुरुषों की जो शुभ कथा हैं वह भी वर्णन करूंगा इत्यादिक श्रेष्ठ और प्रवीण महापुरुषों के समूह कर परिपूर्ण जो यह चरित्र इसके सुनने कर बुद्धिवान पुरुषों के श्रुति का अभ्यास आदि अर्थका चितवन और धर्मविषे धर्मका फल विषे प्रीति, संसार देह भोगों विषे उदासीनता आदि अनेक गुण वृद्धि को प्राप्त होय हैं और पाप कर्म सहित रागद्वेषआदि सकल दोषों का निराकरण होय है, हे कल्याण के अर्थी भव्य जीवहो, तुम इस चरित्र को श्रेष्ठफल पूर्वोक्तप्रकार जान इस चरित्र को सुनों मैं आगमके अनुसार तुमको कहूं हूं ॥

अथ ग्रन्थ प्रारम्भः

१ प्रथम अधिकार

(नागश्री को धर्मलाभ)

अथानंतर–असंख्यात द्वीपसमुद्रों के मध्यविषे जंबूवृक्षकर चिन्हित सार्थक नामको धारण करता हुआ जंबूनामा जंबूद्वीप शोभे है कैसा है जम्बूद्वीप लाख योजनका है विस्तार जिसका और लवण समुद्ररूप वस्त्र कर वेष्टित मानो चक्रवर्ती है, कैसा है जंबु द्वीप और कैसा है चक्रवर्त्ती ? द्वीप विषे तो अनेकदेव अनेक उत्तम पुरुष और समस्त विद्याधर सेवे हैं, और चक्रवर्ति को छह खंड निवासी देव और महा मंडलेश्वर आदि अनेक उत्तम पुरुष सेवे हैं और द्वीप विषे तो अनेक नदी पर्वत गहन देश वन आदि दुर्गम स्थान हैं और चक्रवर्त्ती अनेक नदी पर्वत देश गढ इनका नायक है, तिस द्वीपविषे लाख योजन ऊंचा और षोडश जिन मंदिरों कर महा रमणीक, सुदर्शननामा मेरु इंद्र समान शोभे हैं मेरु तो जल कर भरे सरोवर और गरुड आदि

पक्षी, तिन कर शोभायमान और इन्द्र अनेक अप्सरा अनेक देवों कर, मंडित है, और मेरु तो ध्यान में लवलीन जे चारणमुनि तिन कर सेवनीक है, और इंद्र चारण गंधर्व आदि अनेक गुणीजन, तिन कर सेवनीक है, तिस मेरु की दाक्षण दिशा विषे पांच सै छब्बीस योजन छह कला के विस्तार कहिये दक्षिण उत्तर चौडा भरतक्षेत्र है, सो कैसा है भरतक्षेत्र ? धर्म और सुख इनकी खान है, और खेचर कहिये विद्याधर, भूचर कहिये भूमिगोचरी, और अमर कहिये देव, तिन कर भरा है, और अनेक धर्मात्मा पुरुषों कर भरा है, मानो धर्मका निवासही है, तिस भरतखड के मध्य आर्य खंड है, कैसा है ? अर्हंत कहिये तीर्थंकर, वा सामान्य केवली, और चक्री काहये नवनिधि चौदह रत्न षट्खंडधरा का मालिक चक्रवर्त्ती, और आदि शब्दसे बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, त्रेसट शलाका पुरुष, चौवीस कामदेव, इत्यादिकों कर भूषित है और धर्मात्मा पुरुषों के स्वर्ग और मोक्षके साधनका आदिहेतु कहिये मूल कारण है ॥ भावार्थ—आर्य खंड विषे उत्तम कुल विषे जन्म पाये विना अन्य क्षेत्रों से मोक्षका लाभ नाहीं, तिस आर्यखंड के मध्य नाभि समान अंगनामा देश शोभे है, कैसा है ? जिस के चार दरवाजे होय सो तो पुर, और पत्तन कहिये जिस विषे रत्नादिककी खानि होय, और जिस के एक ओर नदीका बेट होवें, एक ओर पर्वत का बेट होवे, बीचमें शहर बसे, उस की बेट संज्ञा है, और अद्रि कहिये पर्वत, बन, अनेक बाग, और जिस

के चारों तरफ कांटों की वाडि होय उस की गाम संज्ञा है, इत्यादिकों कर, पूरित कहिये भरा है, और तेरह प्रकार चारित्र के धारक महामुनि, धर्मात्मा, क्षुल्लक श्रावक, और असंयमी सम्यक्ती गृहस्थ श्रावक, इन कर निरंतर शोभायमान है, उस देश विषे चंपापुरी नगरी ऊंचा कोट, ऊंचे दरवाजे, और चारों ओर अगाध खाई कर अयोध्या समान शोभे है, और धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि श्रावक और धर्मात्मा शूरवीर सुभटों कर भरी है, और अनेक जिन मंदिरों विषे उत्साह शास्वते होय हैं, भव्य जीव स्वाध्याय, पूजन, गान नृत्यादि कर पुण्यका उपार्जन करें हैं, उस पुरीका सूर्य समान प्रतापी, धर्मात्मा, पुण्यवान, ज्ञानी, अति चतुर चंद्रवाहन नामा राजा, उस के लक्ष्मीमती नामा राणी, प्राणों से भी अति प्यारी शुभ लक्षणों कर परिपूर्ण साक्षात् लक्ष्मी समान होती भई और उस राजा के जिनमत से पराङ्मुख, खोटे, शास्त्रों का ज्ञाता मिथ्यामद कर उद्धत, अतिरौद्र, नाग शर्मनामा पुरोहित होता भया, उसके सौभाग्य की खानि त्रिदेवीनामा ब्राह्मणी स्त्री भई, उनके साक्षात् लक्ष्मीसमान नागश्रीनामा पुत्री विवेक, रूप, सौभाग्यकर शोभायमान और ज्ञान, विज्ञान आदि गुणों कर शोभायमान, देवांगना समान शोभा को धरती भई एक दिन नागश्री ब्राह्मणों की कन्याओं सहित नगरके बाहर नागके मंदिर मूढ़ बुद्धि कर पुण्यकी प्राप्ति के अर्थ नाग के पूजने को गई थी, कैसी है नागश्री ? शुभकर्मकी करणहारी क्रीडा में है उत्साह जिसके तहां पुण्य

के उदय कर सूर्यमित्र, अग्नि भूत हैं नाम जिनके ऐसे दोय मुनि देखे, कैसे हैं, मुनि ? पुण्य कर्म के कारण हैं,और शुभ लक्षणों कर संयुक्त, और सत्पुरुषों को निर्मल धर्मोपदेश के दायक, अनेक ऋद्धि कर मंडित, महाप्रवीण, द्वादशांग श्रुतसमुद्रके पारगामी, और सब जीवों के हित विषे उद्यमी और रत्नत्रय रूपही हैं धन जिनके, ध्यान और अध्ययन जो जिन बाणी का पठन, उस विषे सावधान हैं, शुद्ध प्राशुक शिलापर पद्मासन तिष्ठे हैं मुनियों के समीप जाकर मस्तक नवाय मुनि के चरणारविंद को नमस्कार कर भोलेपने से मुनियों के समीप बैठी, सूर्यमित्र मुनि नागश्री की आगामी शुभगति होनी जान और उसके पूर्वभवों को जान कर कोमल बाणी कर कहते भये, हे पुत्री तू गृहस्थ का धर्म अंगीकार कर, कैसा है धर्म ? स्वर्गनिवास को आंगण समान है ॥

भावार्थ—धर्मके प्रसाद से स्वर्ग की प्राप्ति तो बिना उपाय ही होय है, धर्म के सेवन कर इस भव विषे और परभव विषे मनोवांछित सुख उपजे है, इस धर्म के प्रसाद कर तीनलोक संबंधी इंद्र, नरेंद्र, नागेन्द्र के सुख होय हैं, धर्मात्मा जीवों के सैकडों मनोरथ बिना यत्न स्वयमेव ही सिद्ध होय हैं, मदिरा मांस और मधु कहिये शहत इन का त्याग कर और जूवा आदि सप्तव्यसनों का त्याग कर, और जीवों की दया करनी, सांच वचन बोलना, चोरी का त्याग करना, शीलव्रत पालना, और परिग्रह प्रमाणीक राखना, इन पंच अणुव्रत

के आचरण कर गृहस्थ का धर्म होय है, इस से व्रती धर्मात्मा जीव धर्म के फल कर देव लोक को प्राप्त होय हैं और यह आत्मा अव्रती पाप के उदय कर नरकगति तिर्यंचगति को प्राप्त होय है, इस भांति जान जे सुखके अभिलाषी जीव हैं उन को बारह अविरति कामचेष्टा, पांचो इंद्रियों के विषय, और खोटे आचरण, इनका त्याग कर सांचेव्रत ग्रहण करने योग्य हैं, यह वचन मुनि के सुन नागश्री बोला हे तात ! सुखके अभिलाषी जीव जिनव्रतों को धर्म के अर्थ आचरण करे हैं वह व्रत कौनसे हैं सो मुझे कहो तब सूर्यमित्र मुनिराज बोले, हे पुत्री, व्रतों का किंचित् स्वरूप कहूं हूं सो तू आत्महित के अर्थि सुन, सकल त्रसजीवों को मन वचन काय कर चित्त विषे निज समान धारण कर, सब जीवों के हितकारी प्रथमही अहिंसा अणुव्रत ग्रहण करना, जैसे सुख के अर्थि शुभ क्रिया का जो आचरण सोयश का करनहारा होय है, तैसे समस्त जीवों को अभयदान का दायक ऐसा जो अहिंसा अणुव्रत सो समस्त व्रतों का मूलकारण है ॥

भावार्थ–एक दया बिना सकल क्रिया आचरण और व्रतों का धारण करना निष्फल है, क्योंकि तीन लोकको राज्य संपदा से भी समस्त जीवों को अपना अपना जीतव्य अत्यंत प्रिय है ॥

भावार्थ–प्राणों का वियोग भये पीछे तीन लोककी संपदा कौन भोगवेगा ? इस लिये हे पुत्रि, आदि विषे अहिंसा अणुव्रत प्रधान है, और इस अहिंसा अणुव्रतविषे ही व्रतों की रक्षा के अर्थि

वडका वडवाला, पीपल की गोल, ऊमर, कठूमर, और पाकर फल इन पंच उदंबरों कर सहित मदिरा मांस और मधु कहिये शहत, यह ज्ञानी जीवों को विष समान जान त्याग करने योग्य हैं, सो श्रावक के यही आठ मूल गुंण हैं, और मदिरा मांस शहत और पंच उदंबर इनके भक्षण विषे,लपटी जे जीव हैं, उनके दया रूप बुद्धि का तो लेश भी नहीं है, और दया रूप बुद्धि विना समस्त जीवों की दया है मूल जिस में ऐसा जो दया मई धर्म उसका विचार कैसे होय ॥

भावार्थ–जिसके अंतरंग विषे दया होगी सोई पुरुष जीवोंकी रक्षा करेगा,और पापी निर्दयी है सो जीवों की रक्षा कैसे करेगा ? और ज्ञानी जीवों को जूवा आदि सात व्यसन शीघ्र ही त्याग करने योग्य हैं, कैसे हैं सात व्यसन ? सकल पापों की तो खानि है, और नरक के मार्गके दिखाने हारे हैं, इन व्यसनों के त्याग से ही जीवों को लाभ होय है, सोई नाटक समयसार विषे कहा है,

दोहा–जुवा खेलन मांसमद, वेश्या विसन शिकार।
चोरी पर रमणी रमण, सातो विसन निवार ॥

जव व्यसनासक्त जीवोंके दया और सांच आदिगुण कभी भी नहीं होंय तो दया और सांच

बिना मनुष्यों के अहिंसादिक व्रत और उत्तम क्षमादिक धर्म कैसे उत्पन्न होंय? जैसे जूवा आदि सप्तव्यसनका त्याग किया तैसेही धर्मात्मा पुरुषों को अहिंसा व्रतकी विशुद्धता के अर्थ सकल जगत् विषे निंदनीक जो रात्रि भोजन तिसका भी त्याग करना योग्य है, जो अपने प्राणों का त्याग होय तो भला ही हो, परन्तु प्राणियों की रक्षा वास्ते रात्री भोजन तो कदाचित् भी नहीं करना क्योंकि जे अज्ञानी जीव रात्रि विषे भोजन करे हैं उनके त्रस जीवों की राशिके भक्षण से मांस भक्षण का त्याग कैसे होय? और दयाव्रत भी कहां से पले?

भावार्थ–जिसने रात्रि भोजन किया उसने तो मांस ही भक्षण किया; देखो अन्यमत विषे भी ऐसा कहा है, "कि रात्रि विषे अन्न तो मांस समान है, और जल रुधिर समान है" इस लिये अहिंसादि व्रतों की रक्षा के अर्थ रात्रि भोजन का त्याग अवश्य ही करना और अनंतानंत जीवों के पुंज ऐसे जे अदरक आदिलेय कंद उनका औषधि के निमित्त भी ग्रहण नहीं करना कैसे हैं जमीकंद? समस्त जगत् विषे निंदनीक हैं, और मूलीआदिक का भी भक्षण नहीं करना यह भी अनेक जीवराशि के पुंज हैं, और जे जीव रसना इंद्रियके विषय के लोलुपी अनंतकाय जे अद-रक आदि कंदमूल तिनको भक्षण करेहैं उन जीवों के अनंतानंत जीवराशि के भक्षण से दयामयी धर्म कहां है? हे पुत्रि, अथाणा और बोरआदि फल और नवनीत कहिये लूण्यां घृत (मक्खन)

इत्यादिक जे हैं ते कीड़े लट आदि त्रस जीवों कर भरे हैं महानिंद्य हैं, यह ज्ञानी जीवों के भक्षण योग्य नहीं हैं, सोई समयसार नाटक में कहा हैं ॥

कवित्त—बोरा घोलबड़ा निशिभोजन बहुबीजा बैंगन संधान।
बड पीपल ऊमर कठूमर पाकरफल जो होय अजान॥
कंदमूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरा पान।
फल अतितुच्छ तुषारचलित रस ये जिनमत बाईस अखान॥

और असंख्यात बादर सूक्ष्म जीवों की हिंसा का कारण अनछाणा जल धर्मात्मा जीवोंको कभी भी पीने योग्य नहीं है, कैसा है अनछाणा जल ? बहुत दुःख और पाप तिनका आकार कहिये खानि है, सोई प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में कहा है ॥

चौपाई—बिन छानो अंजुलि जलपान। इक घटतैं कीनो जिन न्हान॥
ता अघका हमको नहिं ज्ञान। जानत हैं केवलि भगवान॥

इत्यादि पूर्वे कहे और बैंगण, मतीरा, (तरबूज) कोहला (मीठा कद्दू) (कांसीफल) आदि बडे

फल असंख्यात त्रसजीवों की हिंसाके कारण हैं सो धर्मात्मा जीवों को अहिंसाव्रत की रक्षाके वास्ते भक्षण करने योग्य नहीं हैं, अणुव्रती धर्मात्मा पुरुष हितकारी, प्रामाणिक सारभूत, पुण्य के मूल परजीवों के श्रवणों को अति मिष्ट, और धर्मकारक ऐसे सत्य वचन बोलें, और सत्पुरुषों कर निंदनीक ऐसा असत्य वचन नहीं बोलें, सत्यवचन के बोलने से सत्पुरुषों की कीर्ति लोक विषे फैले है, और तीनलोक की लक्ष्मी स्वयमेव प्राप्त होयहै,और विवेक काहये भेद विज्ञान तिसकर भली बुद्धि का प्रकाश होय है, और सकल लोक विषे बचनकी प्रमाणता होय है, और झूठ बचन के बोलने से बुद्धि का नाश होय है, अपयश फैले है, और सर्व जीवों के अविश्वासका पात्र होय है, और राजादिकों से होठ, पांव, नाक, कान, आदि का छेद रूप दंड पावे है, और अचौर्यव्रत की रक्षा के अर्थ बिना दी हुई और मार्ग में पडी भूली जाती रही पराई वस्तु को काला नाग समान जान ग्रहण नहीं करनी, हे पुत्रि परद्रव्य के चुराने से चोर जे हैं, वह इस भव विषे तो वध, बंधन, कर्ण नाशिका छेदनादिक दुःख पावे हैं, और पाप कर्मके उदय से परभवविषे नरकादि गति के असह्य दुःख भोगवे हैं ॥ भावार्थ–माता,पिता, पुत्र, स्त्री,बहिन, भाई, सज्जन, परिजन, नौकर आदि कोई भी चोर के सहाई नहीं होय हैं, चोर अकेलाही इस लोक परलोक संबंधी दुःख भोगवे है, अब चौथा अणुव्रत ब्रह्मचर्य का पालनवाला अपनी विवाहिता स्त्रीबिना समस्त परस्त्रियों को मन, बचन, काय

कृत, कारित, अनुमोदनाकी शुद्धता कर माता, बहिन पुत्री समान देखे है, और कुशील, परस्त्री लंपट पुरुष इस भव विषे तो वध बंधन पीलन हस्त कर्ण नाशिकादि छेदन और धनका क्षय आदि दुःखोंको प्राप्त होय है और परभव विषे सातवें नरक जावे है, परिग्रह प्रमाण नामा पंचम अणुव्रत की प्राप्ति के अर्थ लोभरूप वैरीका नाश कर ज्ञानी जीवों ने क्षेत्रआदि दश प्रकार बाह्य परिग्रह की थोड़ी संख्या राखनी। भावार्थ–जितने परिग्रहसे अपना धर्म सधे,और परिणामों में आकुलता नहीं होय, ममत्व का अभाव होय उतनी तो अंगीकार करे,और अव शेष परिग्रहका परित्याग करे,हे पुत्रि,कहे जे यह पंच अणुव्रत उनको धर्म और सुखके अर्थ तू अंगीकार कर, ग्रहण कर, कैसे हैं,यह पंच अणुव्रत? इस पर्याय में तो देवलोक संबंधी सुखों के साधक हैं और परंपराय निर्वाण सुखके साधक हैं सो जे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष शोभायमान हैं वह सुख और गुणों के भंडार ऐसे जे पंच अणुव्रत तिन को मन, वचन काय की शुद्धता कर पाले हैं वह भव्य जीव अच्युत स्वर्गपर्यंत अनुपम सुखों को भोग कर निरंतर निराकुल सुखों की खानि जो पंचमगति कहिये निर्वाण उसको प्राप्त होय हैं॥

हे ज्ञानी पुरुष हो! इस भांति जान कर सारभूत परमोत्कृष्ट स्वर्गमोक्ष संबंधी सुखके कारण और जिनेंद्र भगवान कर कहे ऐसे पंच अणुव्रत तिनको सदाकाल आचरण करो, और धर्मरूप वृक्षके मूल-समान और तीन लोक संबंधी सारभूत सुखों के देनहारे ऐसे पंच अणुव्रतों के आचरण बिना क्षणभंगुर

अपनी आयुविषे एक घड़ी मात्र भी अपने हित के अर्थी पुरुषों ने वृथा नहीं गुमावनी ॥

भावार्थ–आयु तो क्षणभंगुर है, इस लिये व्रत धारण कर आयु को व्यतीत करे, तो मनुष्यभव सफल होय देवलोकके सुखपाय कर्मों का क्षय कर निर्वाण को प्राप्त होय ॥

सो ये व्रतधारण कर मनुष्य पर्याय सफल करनी फिर यह अवसर मिलने का नहीं ऐसा उपदेश है ॥

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्यविरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथकी देशभाषामय वचनिका विषे नागश्रीके धर्म को लाभ वर्णन नाम प्रथम सर्ग समाप्त भया ॥



२ दूसरा अध्याय

(अणुव्रतों के विरुद्ध (बरखिलाफ) पापों की कथायें)

चौपाई—जे देहैं सांचो उपदेश। तिहुजगजन बंधव परमेश ॥
ते सव साधु अमल गुणगेह। देहु मोहि निज गुणघर नेह॥

अथानंतर—सो नागशर्म ब्राह्मण की पुत्री नागश्री, सूर्यमित्रमुनि के चरणारविंद को नमस्कार कर, मुनिके उपदेश से सम्यग्दर्शन सहित श्रावक धर्म संबंधी पंच अणुव्रतों को अंगीकार करती भई, व्रतोंको ग्रहण कर नागश्री अपने घर जानेको सन्मुख भई, तब अवधि ज्ञानके बल से शुभाशुभ होनहारके जानने हा ऐसे सूर्यमित्र मुनि नागश्रीको ऐसी शिक्षा देते भये, कि हे पुत्रि, यदि तेरा पिता बलात्कार सर्वथा व्रतों को छुडावेगा तौ भी मत छोडियो, कैसे हैं व्रत? देवों को भी दुर्लभ हैं ॥

भावार्थ—देवों के किसी काल में भी व्रतों का ग्रहण होय नहीं सम्यग्दृष्टि जीवों के निरंतर यह विचार रहे है, कि हमारे देव पर्याय की थिति कब पूर्ण होवेगी तब हम मनुष्य पर्याय पाय पंच

महाव्रत अथवा अणुव्रतों को धारें, यहां तो अव्रत संबंधी महान् घोर दुःख है,अथवा चार गति संबंधी चोरासी लाख योनि विषे भ्रमते देवों के सुख तो अनंतवार भोगे, और सम्यग्दर्शन सहित व्रतों का धारण एक वार भी नहीं भया, सो व्रतों का पावना महान दुर्लभ है जिस से व्रत धर्म के आचरण करने कर ज्ञानी जीवों के स्वर्ग मोक्ष की संपदा, और लोक विषे मान्यपणा, और निर्मल यश आदि मनोवांछित सुख पाइए हैं, और व्रत भंग संबंधी अति पाप के उदय कर अधम नीच मनुष्य इस भव विषे तो निंदा, क्लेश, आपदा को भोगे हैं, और परभव विषे नरक निगोद आदि दुर्गतिको प्राप्त होयहैं, हे पुत्रि ! जो तू पिता के हठ से व्रतों के धारण करने को असमर्थ होय तो यहां आय के व्रत मुझ को वापिस दे जाना मुझ को सौंपे बगैर अन्यथा व्रतों को मत छोड देना,नागश्री ने कहा, हे तात ! समस्त जीवों को हितकारी जे तुम्हारे बचन उनके अनुसार ही करूंगी। ऐसे कह मुनियों के चरणारविंद को नमस्कार कर अपने घर को गमन किया। और वह जो ब्राह्मणों की पुत्री नागश्री के साथ नाग पूजने को आई थी सो नागश्री ने जब व्रत ग्रहण कर गमन किया तब उस के पहले शीघ्र ही जाय कर इस भांति निंद्य वचन कहे, हे नागशर्म, तेरी पुत्री नागश्री न दिगंबर मुनि के चरणारविन्द को नमस्कार कर उनके पास कितनेक जैनके व्रत अंगीकार किये हैं, सो उन कन्याओं के वचन सुनने मात्रसे ही क्रोध रूप अग्नि कर प्रज्वलित भया है मन जिसका ऐसा होकर नागशर्म ब्राह्मण व्रत ग्रहण कर अपने

घर आई जो नागश्री उसे ऐसे दुर्वचन कहता भया । हे पुत्रि तैंने बुद्धि कर दिगंबर मुनि को नमस्कार कर व्रतादि ग्रहण किया यह बड़ा विपरीत काम किया,अपने को तो यज्ञ कर्मादिक कर ये वेद विषे कहा और अपने कुलक्रम से आया ऐसा ब्राह्मणों का धर्म ही सदा अगीकार करना योग्य है, हे भोरी, जीवों की दया हैं प्रधान जिस में ऐसा जिनेंद्र का भाषा धर्म तैं अंगीकार किया सो धर्म ब्राह्मणों के कुल विषे अयोग्य है जिनेंद्र का भाषा धर्म जैनी श्रावकों के ही करने योग्य है ब्राह्मणों को सर्वथा अंगीकार करना योग्य नहीं । इससे हे पुत्रि ! मेरे हठसे तिन व्रतों को तू छोड दे यह व्रत स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ उस मुनि ही के करने योग्य हैं । हम ब्राह्मणों के कभी भी करने योग्य नहीं हैं । इस भांति पिता के बचन सुन कर नागश्री बोली । हे तात ! अंगीकार किये जे व्रतादिक तिनको जे दुर्बुद्धि छोडे हैं उन का इसी भव विषे नीचपना निंद्यपना होय है, और महान् पाप कर्म का बंध होय है । और परभव विषे पाप के उदय से चिरकाल दुर्गति विषे भ्रमण होय है । इस से अंगीकार किये मुनि के दिये सारभूत और स्वर्ग मुक्ति के कारण ऐसे व्रतों को आत्मीक सुख की प्राप्ति के अर्थ कभी भी नहीं छोडूंगी । यह वचन सुन पापी नागशर्म महाक्रोध कर बोला, हे भोरी ! इन व्रतों को शीघ्र ही छोड़ दे, और जो नहीं छोड़ती तो मेरे घर से निकल जा । इस प्रकार पिता का खोटा हठ जान कर अत्यन्त दुखी होकर नागश्री बोली । हे तात ! व्रत ग्रहण कर जब मैं अपने घर को आने लगी

तुम पर यह आज्ञा करे है कि मेरी सेवा करो, और यदि सेवा करनी तुझे मुनासिब नहीं है तो मुझ से युद्ध करो, और जो युद्ध करना भी तुझे कबूल नहीं तो सर्वस्व भंडार कर पूर्ण चंपापुर नगर देवो। यह वचन सुन राजा चंद्रवाहन बोला। रे दूत, जावो ! जावो !! आज ही रण भूमि विषे तेरे स्वामी का प्रताप देखने को तिष्ठूं हूं। इस भांति कह कर दूत को विदा कर चतुरंग सेना सहित बलनामा सेनापति को वज्रवीर्य पर संग्राम के अर्थ पठाया सो बलनाम सेनापति प्रचंड पराक्रमी चंद्रवाहन राजा की आज्ञा से महान् चतुरंग सेना सहित जाय वज्रवीर्य नृप से भयानक संग्राम का आरंभ किया कैसा है संग्राम ? कायर पुरुषों को भय का दायक है, वहां दोनों सेना का महा घोर संग्राम होता भया यह तक्षक नामा सुभट चंद्रवाहन का अंगरक्षक मरण के भय से भाग कर यहां आया और चंद्रवाहन नृप को ऐसे झूठे वचन कहे। हे देव, हे राजन् ! राजा वज्रवीर्य ने संग्राम विषे बलनामा सेनापति को हाथी घोड़े वस्त्र आदि समस्त वस्तु सहित पकड लिया है । यह वचन तक्षक नामा अंगरक्षक सुभट के सुन राजा हृदय विषे अत्यन्त खेद खिन्न भया। और उधर बलनामा चंद्रवाहन भूप के सेनापति ने महाघोर संग्राम विषे बलात्कार बरजोरी से वज्रवीर्य राजाको पकड़कर दृढ़ बंधनसे जकड़ बन्ध कर चंपापुर प्रति प्रयाण किया। उस अवसर विषे विजय कर आया जो सेनापति उस के वादित्रों के शब्द सुन और सेना के क्षोभ का आडंबर देख राजा ने यह जानी कि, वज्रवीर्य

राजा सेना सहित संग्राम करने को आया है। तब चंद्रवाहन नृप सेना को सजाय संग्राम के अर्थ उद्यमी भया। गढ़की रक्षा पर इतबारी बहुत सुभटों को राख और नगरके दरवाजे बंदकर आप हाथी पर सवार होय संग्राम के अर्थ सेनापति सहित नगर के बाहर तिष्ठा, बलनामा सेनापति चंद्रवाहन को खेद खिन्न स्वरूप देख आप अगाऊ आय राजा को प्रणाम कर नगर के द्वार खुलाये, उस पीछे भूपेंद्र सहित राजमंदिर आय चन्द्रबाहन को प्रणाम कर वज्रवीर्य सौंपा, तब राजा अत्यंत हर्षायमान होय सेनापति को बड़ी संपदा सहित नगर ग्राम दिये, और वज्रवीर्य को छोड़ वस्त्राभूषण दे अमृत समान मीठे वचनों से संतोष उपजाय उस को देशप्रति पठाया। हेपुत्री! वज्रवीर्य नृप गये पीछे सुख से तिष्ठता राजा चंद्रवाहन इस तक्षकनाम सुभट ने पूर्व कहे जे झूठ वचन उन को चितार महान कोपायमान होय मारने को कोतवाल के तईं ऐसी दुष्कर आज्ञा दी है॥

भावार्थ-इस सुभट ने झूठे वचन बोले इस से इस की ऐसी दशा भई है, यह वचन नागशर्म के मुख से सुन कर नागश्री बोली। हे तात! जिस असत्य वचन कर इस ही भव विषे महा घोर दुःख पाइये है तो मैंने असत्य वचन बोलनेका त्याग और सत्यव्रत का अंगीकार योगीश्वर के पास किया है उस को मैं कैसे छोड़ूं? कैसा है सत्यव्रत? इस भव विषे तो पूजा, सत्कार, लोक विषे मान्यता, विश्वास यश, इत्यादि सुखों का कारण है, और पर भव विषे स्वर्ग मोक्ष का दाता है, सारभूत है, ऐसे नागश्री

के वचन सन कर नागशर्म पुरोहित बोला। हे पुत्रि ! यह सत्यव्रत भी रहने दे, परन्तु और बाकी के व्रत तो चल कर यता को सौपें उस पीछे आगे जाते हुए एक और पुरुष सूली विषे परोया हुवा देख करुणाकर नागश्री ने अपने पिता से पूछा। हे तात ! यह पुरुष किस कारण से निग्रह योग्य भया है ? तब नागशर्म ब्राह्मण बोला। कि हे पुत्रि ! मुझे तो खबर नहीं चल कोतवाल से पूछें। इस भांति पुत्री को साथ ले कोतवाल के समाप जाय उस से पूछी। कि हे चंडकर्मन् ! इस पुरुष ने क्या अन्याय आचरण किया है ? तब नागशर्म के प्रश्न से कोतवाल बोला। इस ही चंपापुरी विषे महा धनवान् वसुदत्तनामा राजश्रेष्ठी उस के वसुमती नामा सेठाणी उन के रूपादिक गुणों कर शोभायमान वसुकांता नामा पुत्री भई, एक दिन सर्प कर डसी वसुकांता महाविकराल विष कर व्याकुल मृतक समान मूर्छित भई, तब सेठ ने पुत्री को मरी हुई जान सज्जन परिजन सहित श्मसान भूमि विषे दग्ध करने को प्राप्त करी, वहां चिता विषे मेलने के अवसर विषे वसुकांता के पुण्य के उदय से कोई एक वणिक् पुत्र गरुडनाभि है नाम जिस का, रूपवान्, यौवनवान्, गरुड विद्या विषे महा प्रवीण नाना देशों विषे विहार करता वहां आया। वसुकांता को अति रूपवान देख, वसुदत्त सेठ को इस भांति कहता भया। हे श्रेष्ठिन् ! जो तू इस पुत्री को मुझे विवाह दे तो मैं वसुकांता को जिवाय दूं, तब गरुडनाभि का स्वरूप देख वसुदत्त सेठ उरे कहता भया। कि हे भद्र ! मैं अपनी पुत्री तुझे

परणाऊंगा, तू इसे शीघ्र ही जिवाय दे, तब गरुडनाभि बोला। इस रात्रि विषे तो हर्ष सहित बडे यत्न से चोकसी करो, प्रभात ही वसुकांता का मैं निर्विष कहिये विष रहित करूंगा। तब वसुदत्त सेठ हजार हजार दीनारों की चार पोटली बांध श्मसान विषे वसुकांता के विमान के समीप मेल कर चार सुभटों को बुला पुत्री की रक्षा के अर्थ कहता भया। कि हे सुभटो ! तुम इस वसुकांता की बड़ी चौकसी ओर बहुत सावधाना से चार पहर रात्री पर्यंत रक्षा करो, प्रभात तुम को एक एक हजार दीनार दूंगा, इस में कछु भी संशय नहीं जानों इस भांति वह चारों सुभट हजार हजार दीनार के लोभ से वसुकांता के विमान की रक्षा करते रात्री विषे श्मसान में खड़े रहे। और सेठ आदि समस्त जन आनंद से अपने अपने घर गये, दूसरे दिन प्रभात ही गरुडनाभि गारुडी ने शीघ्र आ कर मंत्र शक्ति के प्रयोगादि कर वसुकांता को विष रहित करी, तब वसुदत्त सेठ अति आनंद को प्राप्त हो कर अपनी पुत्री को विवाह की विधिकर प्रीति सहितगरुडनाभि को दी, और बहुत संपदा दी॥

अथानंतर–दीनारों की चारों थैलियोंमें से एक थैली चोरी गई, और तीन थैली बाकी रही, उनको देख मीठे वचनोंकर चारों सुभटों को सेठ कहता भया। कि विमान के समीप से जिस सुभट ने एक थैली ली उस ने तो हजार दीनार ले लिये, बाकी तीन थैली हजार हजार दीनार की हैं तिन को हे चारों सुभटो, अब तुम ग्रहण करो यह वचन सेठ के सुन चारों ही सुभट सेठ से

बोले कि हमने तो तुम्हारी थैली नहा ली, ऐसे कह कर थैली लेने की हामी किसी ने भी नहीं भरी, तब सेठ शीघ्र ही चंद्रवाहन राजा के निकट जाय प्रगट कहता भया। हे राजन् ! एक हजार दीनारों की एक थैली हमारी चोरी में गई, यह वचन सुन राजा चंडकीर्ति कोतवाल को कहता भया रे दुरात्मन् ! रे चण्डकर्मन् ! मेरे समीप शीघ्र ही चोर को ला, और जो नहीं लावे तो तेरी गरदन काटूंगा। यह वचन सुन कोतवाल बोला। हे नाथ ! जो पांच दिन के अंदर चोर को नहीं पकडूं तो जो आप की इच्छा हो सोई करना। यह वचन सुन कर राजा चंद्रवाहन पांच दिन की मर्यादा चोर लाने को देता भया तब चण्डकीर्त्ति कोतवाल चोर के हेरणे के अर्थ चिंता को प्राप्त भया संता उन चारों सुभटों सहित अपने घर गया, वहां महारूपवान सुमति नामा कोतवाल की पुत्री पिता को चिंतातुर देख पूछती भई, कैसी है सुमति ? वेश्या से भी अत्यंत प्रवीण है बुद्धि जिस की, हे तात ! तुम चित्त विषे चिंतातुर कैसे हो ? चिंता का कारण मुझे कहो। मैं समस्त चिंता को दूर करने को समर्थ हूं, तब चंडकीर्ति कहता भया। इन चारों सुभटों के मध्य काई एक ने हजार दीनार की एक थैली ली है, और राजा चंद्रवाहन मेरा निग्रह करे है, ऐसे पिता चंडकीर्ति कोतवाल के वचन सुन सुमति बोली। हे तात ! तुम तो चिंता रहित निश्चिन्त रहो, मैं आज ही चोर का निश्चय कर तुम्हें सोपूंगी, उस पीछे कोतवाल की पुत्री सुमति उन सुभटों को भोजनादिक दे बोली, अब तुम

चारों ही पांच दिन तो यहां तिष्ठो, ऐसे कह बन्दोबस्त के स्थान विषे मंचकादिक दे वचन की चातुर्यता से तिन के मन को भेदने लगी, चारों सुभटों को भूमिपर बैठाय विकार सहित चेष्टा कर इस भांति बोली। तुम चारों के मध्य काहू एक पर मैं मोहित भई हूं, परन्तु मेरे चित्त विषे यह संशय प्रवर्ते है, कि हे सुभट तुम्हारे निकट भरी थैली को चोर कैसे चुरा ले गया और वहां तुम क्या कर्तव्य करते तिष्ठे थे। यह मेरे सन्देह है, तब उन चारों के मध्य एक सुभट बोला। हे सुमते! मैं तो इन तीनों को कह कर पहिली रात्रि विषे हर्ष सहित वेश्या के घर गया, और पीछले पहर शीघ्र ही आया, तब दूजे ने कहा कि मैं भी इस के पीछे ही आया था। और एकली रंडी को छोड़ कर रात्रि विषे ही वहां आय गया, तब मेरे आये पहले वहां क्या वृत्तांत भया सो मैं नहीं जानता, कोई विश्वास घाती, दुराचारी, दुष्ट यह अकृत्य किया है, तब तीसरे सुभट ने कही हे वत्से, मैं तो मंढिका जो लिरडो उस को पिशित कहिये मांस करना थका वहां तिष्ठूं था, तब वहां क्या वृत्तांत भया सो मैं नहीं जानूं हूं तब चोथा पुरुष बोला। मैं तो नेत्रों कर मुरदे को देखता रहा, मेरी द्रव्य विषे कुछ भी चिन्ता नहीं थी॥

भावार्थ-मेरी दृष्टि तो केवल मुरदा पर ही रही, धन की मुझे खबर नहीं, इस भांति चारों पुरुषों के वचन सुन कर संशय सहित चोरों को जाने तब चोर के निश्चय के अर्थ ऐसे कहती भई

कैसी है सुमति कुटिल, कहिये वक्र मायाचार सहित है आशय कहिये अभिप्राय चित्त जिस का तुम में तो थैली का चोर कोई भी नहीं है, परन्तु, अब मेरे नेत्रों विषे निद्रा प्रवर्ते है इस लिये आलस्य निद्रा के विनाश के अर्थ तुम कोई कथा कहो, तब सुभट बोले। हे सुमते ! हम तो कोई भी कथा नहीं जाने हैं तुम ही कहो, तब सुमति बोली। हे सुभटो ! तुम सुनो मैं कथा कहूं हूं ॥

पटना विषे धनदत्तनामा वैश्यके सुदामा नामा कुमारी कन्या थी, सो एक दिन अपने घर के पिछाड़ी उद्यान विषे सरोवर में पांव धोने को गई थी वहां तुरत ही ग्राहने पांव पकडा तब अति भयभीत होय धनदेव, नामा, अपना जीजा को देख कर बोली, हे धनदेव, यहां बरजोरी से ग्राह मुझे पकड़े है सो तू शीघ्र ही छुड़ाय, तब धनदेव कौतूहल हास्य कर कही जो तू मेरा कहा करे तो मैं तुझे छुड़ाऊं, तब सुदामा बोली तू क्या कहे है ? तब देव ने कही विवाहके दिन रात्री विषे लग्नकाले कहिये फेरों के अवसर वस्त्राभरण सहित मेरे पास आवे तो मैं तुझे छुड़ाऊं, अन्यथा नहीं छुडाऊं, तब सुदामा बोली, जैसे तू कही तैसे ही करूंगी, तब धनदेव कन्याका वचन ले कन्याका दाहिना हाथ पकड़ बलात्कारे बरजोरी कर ग्राह से कन्या को छुड़ावता भया, सो अनुक्रम से सुदामा विवाह के अवसर को प्राप्त भई, तब अपने विवाह के दिन विषे धर्म हस्तमोचनाय कहिये वचन के छुड़ावने के अर्थ धनदेव की दुकान को अंधेरी रात्री विषे सुदामा कुमारी ने घरसे गमन किया, सुदामा को जाती देख

मार्ग में कोई चोर खड़ी कर कहता भया, हे कन्ये, अपने आभरणादिक मुझे दे दे, कन्या बोली, आभरणसहित मुझे कहीं जाना है, इस से आवने के अवसर पर समस्त आभूषण तुझे दूंगी, तू कुछ भी संशय मत करे इस भांति कह कर चोर को वचन दे आगे चली, और चोर अदृश्य होय कौतूहल से कन्याके साथ लागा आगे मार्ग विषे कोई एक राक्षस कन्या को देख बोला, हे कन्यके तू अपने इष्ट देवता का स्मरण कर क्योंकि अबही मैं तुझको निगलूं हूं तब कन्या बोली, हे राक्षस, मैं प्रतिज्ञा ले कर कहीं जाऊं हूं इस से आगमन के काल विषे तेरी इच्छा होय सो करियो ऐसे राक्षस को भी धर्म देय कन्या आगे चली, और राक्षस भी प्रतिच्छन्न वृत्ति कर कन्या के खोजां खोजां चला आगे चलते कोई एक कोतवाल कन्या को खडी राखी, तब कोतवाल को भी धर्म देय सत्य वचन बोलने वाली कन्या ने आगे गमन किया, तब निर्विघ्नपने कर समस्त आभूषणों कर भूषित सुदामा कन्या अपना वचन छुडायवे के अर्थ अंधेरी रात्रि विषे धनदेव की दुकान पर पहुंचा सो रात्रि विषे अकेली आई जो सुदामा उसे देख महा प्रवीण बुद्धिवान धनदेव, जो मन वचन काय कर परदारा से पराङ्मुख है, सो बोला हे भोरी, अबार तू अंधेरी रात्री विषें क्यों आई है ? हे कन्या, त मेरी लघुसाली मेरी पुत्री है, और मेरे समस्त परदारा भगिनी कहिये बहन समान हैं ॥

भावार्थ–तू तो लघुसाली है, सो पुत्री समान है, परन्तु एक विवाहिता स्त्री टार समस्त स्त्री हैं सो मेरे माता, बहन, पुत्री समान हैं, किसी प्रकार भी पररमणी की वांछा नहीं है, और मैंने तो पहिले हास्य कौतूहल कर वचन कहा था, अन्यथा ऐसे पाप बंधके कारण निंदित वचन काहे को उचारता ? जो परदारा कर सहित आसक्तपना को प्राप्त भये ऐसे पापी दुराचारी मनुष्य पाप कर्म के उदय से इस भव विषे वध, बंधन, अपघात मरण आदि दुःखों को पाय कर सप्तम नरक विषे पडे हैं, वहां सागरों पर्यंत असंख्यात काल अति दारुण घोर दुःख सहे हैं, इस से हे कल्याणरूपिणी अब तू अपने घर जाय, ऐसी युक्ति कर धनदेव कर रहित भई सुदामा जिस मार्ग विषे गई थी उस ही मार्ग विषे उलटी आई तब वे चोर, राक्षस, कोतवाल तीनों पुरुष सुदामा की सांच देख चाल, हे कन्या तू महासती हमारे तो माता समान है, ऐसे कह कर हर्षसहित धर्मवचन छोडे, तब वह कन्या पुण्य के उदय से अपने घर आई, यह कथा कह कर कोतवाल की पुत्री सुमति उन चारों सुभटों को पूछती भई, हे सुभट हो, उन चारों पुरुषों के मध्य श्रेष्ठ कौन है सो मुझ को कहो, सुमति का वचन सुन लिरडीका चोर उस चोर की प्रशंसा करी, और मांस करने वाला सुभट तिस राक्षस की प्रशंसा करी, मृतक की रक्षा करने वाला सुभट कोतवाल के साहसकी प्रशंसा कर, वेश्याका पति धनदेवका प्रशंसा करी, इस भांति चारों का अभिप्राय जान चोर का निश्चय कर हर्ष सहित उन चारों को

सीख देय आप हर्ष सहित अपनी सज्यातल पर निद्रा का सेवन करती भई, कैसी है सुमति ? निश्चय जाना जो चोर उस कर बहुत हर्ष सहित है अंतरंग जिसका ॥

दूसरे दिन जिस दुरात्मा ने चोरकी बडाई करी थी, उसे बुलाय अपनी सय्यापर बैठाय कहती भई, हे सुभट, मैं तेरे ऊपर अनुरागिणी भई, परन्तु मेरा पिता एकाकी पुरुष सहित मुझे यहां नहीं रहने दे है इस लिये हम दोनो तुरतही देशांतर विषे चलें यह बैन सुन कर लिरडी के चोर सुभट ने कही बहुत अच्छा, तब सुमति बोली हे सुभट वहां देशांतर में भोग सामग्री विषे द्रव्य कर मनोर्थ सधेगा, ऐसे कह कर अपनी एक थैली दीनारों की चोर के आगे स्थापन कर अति प्रवीणता कर उसे पूछती भई, इतना द्रव्य तो मेरे पास था सो तुझे प्रकट दिखाया परन्तु तेरे पास भी कछु धन है कि नहीं ? तब चोर सुभट ने कहा धन तो मेरे घर बहुत है, यहां तो एक हजार दीनारों की थैली मे हाथ है, ऐसे कह कर उस ही समय जो अपने हाथ थैली थी सो सुमति को प्रत्यक्ष दिखावना भया, तब सुमति थैली को लेय कर तस्कर सुभट को कही तुम अपन शयन के स्थान को जावो प्रातःकाल ही हम मनोहर पांचों इंद्रियों के विषय सुख भोगने के अर्थ देशांतर चलेंगे इस भांति कह कर सुभट को सीख देय हर्ष सहित अपने पिता को थैली सौंप वह कोतवाल की पुत्री सुमति तीसरे दिन प्रकट चोर को दिखावती भई, तब कोतवाल ने भी चोर को

पकड़ कर शीघ्र ही चंद्रवाहन राजा की भेंट किया ॥

हे नागशर्म वह राजा महाक्रोधायमान होय इस चोर के निग्रह करने की यह दुष्कर आज्ञा दी है, यह वचन कोतवाल के मुखसे सुन कर पाप कर्म से भयभीत ऐसी प्रोहित की पुत्री नागश्री अपने पिता को यह प्रकट वचन कहती भई, हे तात इस चोरी के आचरण कर जीव वध बंधन समस्त द्रव्य का नाश कुटुंब का क्षय आदि दारुण दुःख पावे है, इसी लिये योगीश्वर के निकट बिना दी हुई पराई वस्तु का है त्याग जिस में और सारभूत सुखों की खान, ऐसा अचौर्य व्रत मैंने अंगीकार किया है, उस को कैसे छोड़ूं ? तब नागशर्म ब्राह्मण बोला हे पुत्रि, एक यह भी सारभूत उत्तम व्रत तेरे रहो परन्तु और बाकी दो व्रत तो मुनिके दिये मुनि को सौंप देवें ॥

इस भांति जीवों की हिंसा करने से झूठ बचन बोलने से और चोरी के करने से धन का नाश, प्राणों का नाश अपयश का होना आदि नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त भये ऐसे पुरुषों को मार्ग विषे अवलोकन कर नागशर्म प्रोहितकी पुत्री दुःखों से भयभीत होय व्रतों को पालन करने विषे अत्यंत तत्पर भई ऐसे जान कर हे ज्ञानी जन हो, आत्मिक सुख की प्राप्ति के अर्थ अतिचार रहित निरंतर व्रतों को धारण करो व्रतों के धारने बिना अव्रत विषे एक घड़ी मात्र भी काल मति गमावो, ऐसा उपदेश है, सम्यक् ज्ञानी पुरुषों कर वंदनीक और शुद्धात्मा के अनुभव

से स्वर्ग मोक्ष के साधन करन हारे और तीन लोक में भव्य जीवों को संसार समुद्र से तारने विषे अत्यंत प्रवीण और आप संसार समुद्रके पार को प्राप्त भये ऐसे जे मुनिपुंगव दिन दिन प्रति भव्य जीवों को स्वाधीन निराकुल सुख के अर्थ सारभूत पंच महाव्रत पंच अणुव्रत और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र सम्यक्तप इनका अमृतसमान मधुर वचन कर उपदेश दे हैं वह मुनिराजधन्य हैं ॥

इत्याचार्य श्रीसकल कीर्ति विरचिते सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ उस की देश भाषा मय वचनिका विषे हिंसा झठ चोरी से उत्पन्नभये जे प्रत्यक्ष दुःख उनको प्राप्त भये ऐसे जे मनुष्य उनकी कथा का ह वर्णन जिस विषे ऐसा द्वितीयसर्ग समाप्त भया ॥



३ तीसरा अधिकार

(अणुव्रतों के विरुद्ध पापों की कथायें)

चौपाई-दरशन ज्ञानचरण तपसार। धरम अमोलिक मणिदातार॥
संतनको सुरशिव सुख हेत। नमूं तपों धन भाव समेत॥

अथानंतर-आगे गमन करती नागश्री, मार्गविषे कटे हैं कान नाक, जिसके, और पुरुष के मस्तक के साथ बधा है कंठ जिस का महान दुःखित ऐसी नारी को, अन्य स्थान विषे देख पिता को पूछती भई कि, हे तात, इस नारी को ऐसो निंद्य अवस्था कोन से अपराध कर भई ? तब नागशर्म ने कहा हे पुत्रि इसही चंपापुरी विषे समुद्र नामा वैश्य उस के जैनी नामा स्त्री उन के दो पुत्र भये बड़े का नाम नंद छोटे का नाम सुनंद, और इस ही नगरी विषे जैनी का भाई सूरसेन वैश्य उस के मदाली नामा पुत्री थी, एक दिन नंदनामा वणिकपुत्र द्वीपांतर को गमन करता अपने सूरसेन मामा के निकट जाय ऐसे वचन कहे, हे मामा मैं द्वीपांतर को जाऊगा सो यह महारूपशालिनी

तरी पुत्री मदाली मुझे ही दीजियो और जो तू अन्य वणिक् पुत्र को देवेगा तो तुझे राजा की दुहाई
है तब सूरसेन ने कही हे वत्स काल की मर्यादा करके द्वीपांतर को जाओ तब अपने आगमनके
कालकी बारह वर्षकी मर्यादा कर नंदनामा वणिक् पुत्र ने द्वीपांतर को गमन किया और बारह वर्ष
उपरांत छै महीने व्यतीत भये भी नंद नहो आया तब सूरसेन ने नंद के छोटे भाई सुनंद के अर्थ
अपनी पुत्री मदाली देनी करी, दोनों के रमणीक मन्दिरों विषे बड़ी विभूति कर विवाह संबंधी उत्सव
होने लगे, और लग्नके पांच दिन अवशेष रहे तब वणिक्पुत्र नंद द्वीपांतर से आय मदालीका वृत्तांत
जान मधुर बचन कर सज्जन परिजन को कहता भया, अहो सज्जनपरिजन हो, जो सूरसेन आदि
तुम समस्त इस मदाली को सुनंद के अर्थ देनो करी सो छोटे भाई सुनंदकी स्त्री मदाली मेरी पुत्री
समान है तुम भलेही सुनंद को परणाओ ऐसे आज्ञा देय बडा भाई नंद तो फिर द्वीपांतर को गया
और नंदका छोटा भाई सुनंद मदाली को बडे भाई की नियोगिनी जान समस्त सज्जनपरिजन को
प्रकट कही जो यह मदाली बडे भाई नंदकी नियोगिनी मेरी माता समान है इस र मैं इस को न परणूं
तुम अन्य वणिक् पुत्र को भले ही परणाओ मेरे किसी से भी ईर्षा नहीं है इस भांति नंद सुनंद
दोनों भाइयों कर तजी ऐसी मदाली कुंवारीही यौवन को पाय अपने घर विषे तिष्ठी, और सूरसेन
के घरके नजीक अन्य घर विषे कुबुद्धी नागचंद्रनामा वश्य रहे उस के बारह स्त्री और वह बारह कोटि

दीनारका धनी सो पापी दुराचारी पाप कर्म के उदय से कुंवारी मदाली विषे अति आसक्त भया घने दिन उस दुराचारी का व्यभिचार गुप्त चलता था सो स्वयमेव प्रकट हो गया अहो नीच पुरुषों का छिपाया हुवा महान् पाप प्रकट हो जाय है ॥

भावार्थ–नीच पुरुष के मन में यह विचार रहे है कि मेरा अकृत्य कोइ भी नहीं जानेंगे, परन्तु पाप कर्म के उदय कर स्वयमेव प्रकट होजाय है सो अत्यंत पाप कर्म के उदय कर समस्त लोगों के कहने से दुराचारी का व्यभिचार नगर में विख्यात भया यह पापी दुराचारी नागचंद्र कुंवारी मदाली विषे आसक्त भया निरंतर तिष्ठे है, ऐसे सुन चण्डकर्म कोतवाल उनके कुकर्म की परीक्षा कर दोनों अनाचारियों को पकड़े तब राजा की आज्ञा से वध बधन अंगछेदन प्राणहरण आदि घोर दुःखों को यह दोनों मदाली नागचंद्र प्राप्त भये हैं यह वचन पिताके सुन नागश्री बोली हे तात! इस शीलव्रतविना इस भव विषे ऐसे घोर क्लेश पाइये हैं इस ही लिये महान् पुरुषों के समीप मैंने शीलव्रत अंगीकार किया है सो ऐसा शीलव्रत कैसे छोडिये ? कैसा है शीलव्रत ? समस्त दोषों कर रहित निष्कलंक है, और तीन जगत विषे पूज्य है ॥

भावार्थ–शीलवान् पुरुषों के चरणकमल को इन्द्र नरेंद्र नागेंद्रादि समस्त देव मनुष्य निरंतर पूजे हैं। तब नागशर्मने कही हे पुत्रि, इसलिये सारभूत यह शीलव्रत भी रहो परन्तु और एक व्रत

तो मुनि के पास सौंपने को चलें ॥

वहां से आगे आते हुए मार्ग विषे कोतवाल के किंकरों कर मारने को प्राप्त किया और पांव से ले कठ पर्यंत दृढ बंधन कर बंधा ऐसा जो कोई एक पुरुष उसे नागश्री देख अपने पिता को पूछा हे तात, यह दृढ बंधन से बंधा पुरुष कौन है ? और कौनसे निंद्य कर्म कर ऐसी घोर दुःख की अवस्था को प्राप्त भया है सो मुझे कहो तब नागशर्म बोला, हे पुत्रि, यह महालोभी और क्षीर भोजी ऐसा बीरपूर्णनामा मनुष्य नृपके पट घोडों के निमित्त घास की रक्षा करता थका एकदिन घास के बीड विषे प्रवेश किया और किसी का गोधन (गौवें) वहांथा सो लाय कर राजा को नजर किया तब राजा ने हर्षायमान होय कर कहा, यह गोधन तू ही ग्रहण कर सो उस गोधन को ग्रहण कर पाप कर्म के उदय से इसने अति लोभ ग्रहण किया कि राजा ने मुझे यह वर दिया है जो मेरे देश विषे श्रेष्ठ गोधन है उस सर्व को तू ग्रहण कर ऐसे कह कर देशके समस्त लोगों के श्रेष्ठ गोधन ग्रहण कर अति लोभी भया संता पट्टराणी की भैंसों को भी ग्रहण करी तब महादेवी पटराणी ने इस दुराचारीका सकल देशका गोधन ग्रहण आदि अपनी भैंसे ग्रहण करने पर्यंत कुलोभ संबधी दुराचारी का समस्त वर्णन चंद्रवाहन से निवेदन किया, तब राजा महा क्रोधायमान होय अत्यंत लोभ से संचय कियाजो पाप कर्म उसके उदय के निमित्त से अतिलोभी इस पापी के मारने वास्ते कोतवाल

को आज्ञा दी है, यह वचन पिता के सुन नागश्री बोली हे तात परिग्रह के लोभ से लोभी जीवोंके इस भव विषे ऐसे घोर दुःख पाइए हैं सो लोभरूप वैरीके जीतने को मैं दिगंवर मुनि के समीप परिग्रहका प्रमाण किया है इस से इस व्रत को मैं मरण होते भी तजूं नहीं तव नागशर्म बोला हे पुत्रि, यह भी सारभूत व्रत तेरे रहो, परंतु जाय कर उस दिगंवर मुनि का तिरस्कार कर हम दोनों शीघ्र ही आजावेंगे ऐसे कह कर नागशर्म ब्राह्मण नागश्री सहित वन में जाय मुनिपुंगव को देख दूर ही खडा रह कर इस भांति कठोर वचनों कर तिरस्कार करता भया । अरे दिगंवर तू मेरी पुत्री नागश्री को दया आदि पंच प्रकार के व्रत कैसे दिये ? हमारे कुल विषे ब्रह्मा, विष्णु महेश कर कहे प्रदोषादिक व्रत प्रसिद्ध हैं अरे दिगंवर अरे मुझे कह तो सही; ब्राह्मणों की कन्या को व्रत देने का अधिकार तेरा कहा है ? यह नीके विचार॥

भावार्थ-हम राजमान्य उत्तम ब्राह्मण हैं सर्व के गुरु हैं हमसे ऐसा कौन है जो हम को या हमारे पुत्रादिक को व्रत ग्रहण करने की शिक्षा देवे। तव योगीश्वर नागश्रीके हित के अर्थ मधुर स्वर से ब्राह्मण को कहते भये कैसे हैं योगीश्वर ? आगामी कालसंवंधी लाभ अलाभ सुख दुखादिकों के ज्ञाताहैं हे ब्राह्मण, हे नागशर्म, यह नागश्री मेरी पुत्री है मैंने सम्यक प्रकार विचार कर पंच अणुव्रत दिए है इस में तेरा क्या विगाड भया ? कैसे हैं पंच अणुव्रत ? दया है मूल जिन में और धर्म के बाज

हैं,सो सूर्य मित्र मुनिराज के बचनके सुनवे मात्र से ही महाक्रोध को प्राप्त होय कर नागशर्म ब्राह्मण कहता भया हे मुने, यह नागश्री तेरी पुत्री कैसे होय ॥

भावार्थ–नागश्री तो प्रकटपणें प्रसिद्ध मेरी पुत्री है, त्रिदेवीके गर्भसे उपजी है व्रतही के देंने कर तू तेरी कैसे कहे है ? मुनि बोले हेब्राह्मण यह नागश्री हमारी पुत्री अवश्य है इसमें कछु भी संशय नहीं है, और तेरे संशय क्या है ? मैं असत्य नहीं कहूं हूं, सो नागश्री समभाव को प्राप्त भई व्रतो के पालने विषे तत्पर मुनिके चरण कमलों को प्रणाम कर, सूर्यमित्र मुनि के चरणारविंद के समीप तिष्ठी, तब नागशर्म अत्यत क्रोध कर वेगही चंद्रवाहन नृपके समीप जाय अनेक वचनों कर इस भांति पुकार कर विज्ञप्ति करता भया हे देव, एक दिगंबर मुनि मेरी पुत्री नागश्री को असत्य वचन से अपनी पुत्री कह कर बलात्कार बरजोरी से ग्रहण करे है, उस समय नागशर्म प्रोहित कर कहे ऐसे असंभव वचन उन कर सभानिवासी समस्त लोगों के चित्त विषे बडा आश्चर्य भया और राजा चन्द्रवाहन भी नागशर्म प्रोहितके बचन सुनकर अत्यत आश्चर्यको प्राप्त होय अपने चित्त विषे यह विचार करता भया। कैसा है राजा योग्य अयोग्य संभाव्य असंभाव्य के विचार विषे अत्यंत प्रवीण है बड़ी आश्चर्य की बात है जो कदाचित मेरुगिरि चलायमान होय और अग्नि शीतल होय तो होहु, परन्तु जैन के यती असत्य बचन कदाकाल भी नहीं कहें ॥

भावार्थ—निन्यागवें हजार योजन ऊंचा और हजार योजन की जिस का चित्रा पृथ्वी विषे जड़ है, ऐसा मेरुगिर अनादि कालसे कभी भी चलायमान न भया,सो तो किसी दैव की विपरीतता से कदाचित चलायमान हो जाय औरअग्नि भी अनादि से उष्ण है कभी भी शीतल भई नहीं, सो दैव योग से उष्ण स्वभाव को छोड़ कर शीतल हो जाय, परन्तु दिगम्बर मुनि असत्य बचन कभी भी न कहें, जिन निर्मोही जैन के यतियों ने बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रह का त्याग किया तिन यतीश्वरों के झूठे बचन कर पृथिवी विषे कहा साध्य है कुछ भी साधने योग्य नहीं॥

सो नागश्री अब इस नागशर्म ब्राह्मण की पुत्री है यह सर्व लोक विषे विख्यात है, परन्तु यहां कुछ कारण विशेष है उसको मैं नहीं जानू हूं,इस भांति राजा चंद्रवाहन विचारकर बहुत लोकों सहित नागशर्म नागश्री संबंधी संशय के विनाश के अर्थ सूर्यमित्र मुनिराज,के समीप गया और कई पुरवासी धर्मात्मा जैनी श्रावक धर्म के अर्थ परिवार सहित सूर्यमित्र मुनि की वंदना का वन में गये, कई लोग सूर्यमित्र मुनि और ब्राह्मण नागशर्म प्रोहित के जो नागश्री संबंधी विवाद था उस के सनने को गये और कोई जन बिना प्रयोजन कौतुक देखने को ही वन में गये, वहां वन विषे प्रासुक शिलापर विराजमान और चंद्रमा समान कांति युक्त है मूर्त्ति जिन की, रागद्वेष रहित निर्विकार शांतमुद्रा के धारक षट् काय के जीवों के रक्षक पंच महाव्रत के परिपालक, मेरु समान थिर-

तारान ऐसे जो सूर्यमित्र मुनिराज उनको देखकर राजा चंद्रवाहन पंचांग नमस्कार कर अमृत समान मधुर वचन कह कर इस भांति पूछता भया ॥

हे स्वामिन् ! कदाचित् दैव योग से समुद्र अपनी मर्यादा को उलंघे तो उलंघो और कुलाचलों कर सहित भू पीठ चलायमान होय तो होहू, तथापि सत्यवादी निर्मोही यतियों के मुख से जैसे तैसे भी वचन कोई काल विषे भी चलायमान नहीं होय है, ऐसे हृदय विषे नीके जानू हूं तो भी हे प्रभो तीन जगत्के नायक मैं मन के संदेह की हानि के अर्थ आपसे कछु एक पूछने का इच्छक हूं, हे देव आप के पास बैठी यह रूपवान् नागश्री कौन की पुत्री है सो आप मुझे सांच कहो कैसे हो तुम सत्य वचन रूप किरणों कर संदेह रूप तिमिर के नाश करने को भानु समान हो, तब समस्त सभाजनों के तिष्ठते हुए राजाको सूर्यमित्र मुनिराज प्रकट वचन कर कहते भये । हेराजन् ! यह नागश्री मेरी पुत्री है, यह वचन सूर्यमित्र मुनिराज के सुन नागशर्म ब्राह्मण लाल नेत्र कर कहता भया । हे राजन् ! मेरी भार्या त्रिदेवी नाग का आराधन कर और वड़ी भक्ति थकी पूजन कर नागश्री नामा कन्या को प्राप्त भई सो यह वार्ता समस्त नगर विषे प्रसिद्ध है, और यह आप के पास बैठे समस्त पुरवासी जन अथवा सज्जन परिजन क्या नहीं जाने हैं, अब यह नागश्री इस ब्रह्मचारी की पुत्री कैसे भई इस विचार विषे सकल परिजन सहित नीके चित्त धारण करो, तब मुनि राज बोले।

हे राजन्! जो यह नागश्री इस नागशर्म की पुत्री है तो नागशर्म ने नागश्री को कुछ विद्या भी पढ़ाई है कि नहीं। व्याकरण, छंद, अलंकार, नाममाला, नाटक, राजनीति, कथा, पुराणादिक, लौकिक चमत्कारी शास्त्र, और आचार, गणित, न्याय आदि अध्यात्म शास्त्र शिक्षा विवेक धर्मादिक की सिद्धि के अर्थ और अज्ञान की हानि के अर्थ समस्त जन अपने पुत्रादिकों को पढावें हैं इस ने क्या पढ़ाया है, तब नागशर्म बोला मैंने तो कुछ भी शास्त्र नागश्री को नहीं पढ़ाया तब मुनि बोले तूने इस को कुछ भी शास्त्र नहीं पढ़ाया है तो यह नागश्री तेरी पुत्री कैसे होय, बालकों को जो शास्त्र पढ़ावे हैं उन ही के वह पुत्र पुत्री होते हैं, सो नागश्री को हमने शास्त्र पढ़ाया है इस से यह नागश्री हमारी पत्री है फिर नागशर्म बोला। हे योगिन्! तैंने नागश्री को क्या शास्त्र पढाया है सो मुझे आदर थकी कहो, तब सूर्यमित्र मुनिराज प्रकट कहते भये मेरे पढाने से यह पुत्री नागश्री अनेक श्रुत सागर के पार को प्राप्त भई है, इस में कुछ भी संशय नहीं है यह बचन मुनिराज के सुन सकल सभाजन जब अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त भये। तब राजा चंद्रवाहन हाथ जोड़ नमस्कार कर इस भांति सूर्यमित्र मुनिराज को पूछता भया। कैसा है राजा? आश्चर्य कर सहित है मन जिसका, हे मुनिराज जो इस कन्या को आप ने शास्त्र पढाया है, तो पाप की हानि के अर्थ इसकन्या की परीक्षा दिलावो, तब योगीश्वर विस्मयकारिणी बाणी कर श्रेष्ठ बचन कहते भये। हे राजन्! यहां ही मैं शास्त्रों की परीक्षा दिवावूं

हूं इस भांति कह कर पंडितों की सभा के मध्य नागश्री के मस्तक पेर दहिना हाथ फेर सूर्यमित्र मुनिराज दिव्यबाणी कर प्रकट कहते भये हे वायुभत, राजगृह नगर विषे मैं सूर्यमित्र तुझ को बहुत शास्त्र पढ़ाये थे उन सकल शास्त्रों की नृप चन्द्रवाहन आदि समस्त पंडितों को अब परीक्षा देओ जिस कर के इन का संशय दूर होय. इस भांति सूर्यमित्र मुनिराज के कहने से नागश्री दिव्य वाणी कर सरस्वती समान अनेक शास्त्रों के अर्थ प्रकट कहवे को प्रारंभ करती भई, जो कोई पंडित जिस शास्त्र का जैसा स्थल जिस वाणी कर पूछे, उस पंडित को उस शास्त्र के वैसे स्थल का तिस वाणी कर नागश्री प्रकट उत्तर देवे है ॥

भावार्थ–जिन बाणी के चार अनुयोग हैं, जिन विषे किसी ने प्रथमानुयोग का स्वरूप पूछा । तब नागश्री ने कहा, जिस विषे तीर्थंकर आदि त्रेसठ श्लाका पुरुषों के पुराण और मोक्ष गामी महंत पुरुषों के चरित्रोंका भवावली सहित पुण्य पापके फलका सब विस्तार कर कथन होय सो प्रथमानुयोग है, किसी ने पूछा करणानुयोग का स्वरूप क्या है, नागश्री ने कहा । जिस विषे गुण स्थान आदि बीस प्ररूपणा का और ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों का बंध उदय उदीर्णा और सत्ता का और तीनों योगों के द्वारे कर्म नो कर्म के निमित्तभूत समय समय पुद्गल द्रव्य के आगमन का और औपशमिक आदि पंच भावों का और तीन लोक के संस्थान का और इक्कीस भेद संख्या प्रमाण का

आठ भेद उपमा प्रमाण का और इन प्रमाणोंके विशेष चौदह धारा आदि अनेक धारा का सविस्तर वर्णन होय सो करुणानुयोग है, किसी ने कहा। चरणानुयोग का क्या स्वरूप है, नागश्री ने उत्तर दिया। जिस विषे अठाईस मूल गुण, चौरासी लाख उत्तर गुण अठारह हजार शील के भेद, पांच प्रकार चारित्र और दीक्षा शिक्षा प्रायश्चित्तादि देने का विधान स्वरूप मुनि के आचार का, और सम्यक्त्वादि आठ मूल गुण, ग्यारह प्रतिमा रूप श्रावक धर्म का सविस्तर वर्णन होय सो चरणानुयोग है और किसी ने द्रव्यानुयोग का कथन पूछा। तब नागश्री उत्तर दिया कि, जिस विषे षट् द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय इन का और प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण और प्रमाणों के एक देशरूप नैगमादि सप्त नयका और सप्त भंगों कर चार निक्षेपों का वस्तु का यथावत् स्वरूप साधने का और बौद्धादिकों कर कल्पना किये छै प्रमाण, तहां बौद्धों के प्रत्यक्ष अनुमान दोय प्रमाण और सांख्य के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, यह तीन प्रमाण, और नैयायिकों के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमा, यह चार प्रमाण, और नैयायिकों के दूसरे मत विषे प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमा, अर्थापत्ति यह पांच प्रमाण और जैमिनी के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव यह छै प्रमाण इन के निराकरण का और नय निक्षेपों के प्रचार कर रहित केवल निज शुद्धात्म स्वरूप निज स्वभाव के अनुभव का सविस्तर वर्णन होय सो द्रव्यानुयोग है, ऐसे चारों अनुयोगों के स्वरूप और तिन

अनुयोगों के अधिकार और अधिकारों विषे अवांतर अधिकार, और सुखमा दुखमा आदि दुखमा दुखमा पर्यंत षट् काल की स्थिति का, और तीन काल विषे जीवों की जघन्य उत्कृष्ट आयु और शरीर की अवगाहना, शरीर के वर्ण, और सुख, दुःख, बल वीर्यादिकों की हानि वृद्धि का स्वरूप आदि समस्त प्रश्नो के अनुसार उत्तर रूप बचन नागश्री ने प्रकट कहे, इस भांति नागश्री के मुख से श्रुताध्ययन संबंधी परीक्षा दिवाने से समस्त ज्ञानी जनों के हृदय विषे अत्यंत आश्चर्य भया। तब राजा चंद्रवाहन सूर्यमित्र मुनिराज को नमस्कार कर प्रकट श्रेष्ठ वचन कहता भया। हे नाथ! यह नागश्री सर्वथा तुम्हारी ही पुत्री है, नागशर्म ब्राह्मण की नहीं, परन्तु मेरे वा और सज्जन पुरजनों के चित्त विषे एक कौतुक रूप संदेह प्रवर्ते है। कि हे प्रभो! परीक्षा देने के अर्थ तो नागश्री के सिर पर हाथ फेर वायुभूत का नाम उच्चारण किया और श्रुत की परीक्षा वायु भूत के नाम कर नागश्री के मुख से दिवाई सो यह समस्त लोगों के बड़ा कौतुक , तब राजा के प्रश्न से फिर सूर्यमित्र मुनि बोले। हे राजन्! जो भवांतर विषे वायुभूत था सो ही निश्चय कर यहां नागश्री भई है, यह बचन मुनि के सुन कर उपजा है आश्चर्य जिस को? ऐसा राजा चंद्रवाहन हाथ जोड़ सिर नवाय सूर्य मित्र मुनिराज को नमस्कार कर अमृत समान कोमल बाणी कर प्रार्थना करता भया। हे भगवन्! हम सबों पर कृपा कर नागश्री और वायुभूत सम्बन्धी पूर्व भवों का दिव्यबाणी

कर उपदेश करो, इस भांति चन्द्रवाहन के प्रश्न करने से सूर्यमित्र मुनिराज भव्य जीवों के हित की सिद्धि के अर्थ और सकल जीवों के उपकार के अर्थ और धर्मकी वृद्धिके अर्थ नागश्रीके पर्वभव कहत भये ॥

हे राजन् धर्म और धर्म के फल विषे प्रीति की बढावन हारी नागश्री की कथा और वायुभूत के भव विषे हमारे संबंध का कारण और पुण्य पाप के उपार्जन कर अनुभव किये भवांतर विषे सुख दुःख आदि समस्त कथन तुझे कहूं हूं, सो तू अपने चित्त को एकाग्र कर सकल सभाजन कर, सहित श्रवण कर ॥

महान पाप के उपार्जन से नागश्री के जीवने भवावली विषे नाना प्रकार दुःख भोगे और अघ की करन हारी अनेक दुर्गति पाई फिर व्रतधारणकर संचय किया जो पुण्य का लेश तिस के फल से नागशर्म ब्राह्मण के यह सती नागश्रीनामा पुत्री भई है सो समस्त संबंध प्रकट पणे कर कहूं हूं तिसको अहोभव्य जीव हो, तुम एकाग्रचित्त कर सुनो यह तीसरा अधिकार पूर्ण भया यहां तीसरे अधिकार के अंत में श्री सकल कीर्ति मुनि इस ग्रथ के रचिता अंत मंगल के अर्थ श्रीपंच परमेष्ठि को नमस्कार करे हैं, कैसे हैं पंचपरमेष्ठि अनुपम गुणों के समुद्र और साक्षात् धर्म के स्वरूपके दिखाने विषे दीपक समान पंच महाव्रत रूप आभूषण के धरन हारे स्वर्ग-मुक्ति के कारण इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर पूजनीक और कर्म रूप वैरियों के जीतन हारे पांचों इंद्रियों के विषयों से पराङ्मुख ऐसे परमपूज्य

पंच परमगुरु अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु उनको मैं नमस्कार करूं हूं ॥

इत्याचार्य सकल कीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृतग्रंथ उसकी देश भाषामय वचनिका विषे कुशील परिग्रह के संबंध कर जीवों के प्रत्यक्ष दुःख देखने का और नागश्री संबंधी भवांतर के प्रश्न का है वर्णन जिसमें ऐसा तृतीय अधिकार समाप्त भया ॥



४ चौथा अध्याय

(नागश्री के भवों का वर्णन)

चौपाई—अर्हंत सिद्धसूर उवझाय । सकल साधु के प्रणमूं पाय ।
जिननैं रागरोष निरजया । ते मुझ निज गुण दो कर दया ॥

अथानंतर—इसही जंबूद्वीप विषे भरतक्षेत्र वत्सदेश विषे कौशांबी नामा नगरी उसका राजा अतिबल उसके प्राणों से भी प्यारी मनोहरी नामा पटराणी, और सकल शास्त्रों का ज्ञाता सोमशर्म नामा

ब्राह्मण पुरोहित, उसके काश्यपी नामा ब्राह्मणी उनके दो पुत्र थे, बड़ा अग्नि भूत छोटा वायु भूत दोनों भाई बाल पने से पिता के अति लाडले यथेच्छ क्रीडा करते थे बहुत उपायकर पिताने पढाये तो भी नहीं पढे. केवल मूर्ख ही रहे,किसी पाप के उदय कर उनका पिता सोमशर्म परलोक गया, तब राजा अति बल बिना विचारे अग्नि भूत वायु भूत को पुरोहित का पद दिया इस भांत वह दोनों भाई सोमशर्म के पुत्र शास्त्र के ज्ञान कर रहित विषय सुख भोगते तिष्ठते थे, उस समय अनेक देशों में भ्रमण करता और तर्क शास्त्र के विवाद कर अनेक वादियों के वाद के मद को दूर करता ऐसा एक विजय जिव्ह नामा वादी आय कर वादियों से वाद करने के अर्थ राजद्वार पर वाद पत्र (विज्ञापन) लगाया यहां वाद करने का अधिकार केवल पुरोहित का है अन्य का नहीं यह विचार कर अन्यवादियों ने वाद पत्र ग्रहण नहीं किया,तब राजा अतिबलने इन दोनों भाइयों को यह आज्ञा दी,कि हे द्विज पुत्र हो, तुम अपनी बुद्धिमानी से इस वादी को वाद पत्र का अच्छी तरह उत्तर दो । तब वह अग्निभूत वायु भूत दोनों भाई तिस वाद पत्र को लेय शीघ्रही फाड डाला तब राजाने उन दोनों भाइयों को बड़े मूर्खजान अनेक दुर्वचन कह अपमानकर उनका दावेदार जो सोमिल ब्राह्मण था उसको शीघ्रही पुरोहित का पद दिया, तब वह दोनो भाई मान भंग के दुःख कर हृदय विषे अत्यंत खेद खिन्न और नष्ट भई है आजीविका जिनकी वह अपने घर विषे इस प्रकार विचार करते भये, अहो हम मंद भागी हैं,

पिता पढाये तो भी पाप के उदय कर नहीं पढे कुमार्गमें लीन भये अति मूर्ख ही रहे, पुरुषो के ज्ञान रूप नेत्र बिना धर्मादिक की परीक्षा कहां और ज्ञान बिना लोक में मान्यता कैसे होय, और परलोक विषे सुख कैसे होय, जिन जीवों ने गुरु के निकट कल्याण का दायक समस्त तत्त्वों का प्रकाशक ज्ञान रूप नेत्र नहीं पाया वह पुरुष इस लोक विषे अंधे ही हैं जे दुर्बुद्धि तात मात गुरु जनादिक की शिक्षा और हितोपदेशादिक नहीं माने हैं उन पापी जीवों के दोनों लोक बिगडे हैं, ज्ञानाभ्यास कर निर्मल ज्ञान की उत्पत्ति होय है ज्ञानाभ्यास करके ही सत्पुरुषों को मोक्ष का लाभ होय है इस भांति विचार कर वह दोनों भाई अग्निभूत और वायुभूत श्रुतज्ञान के पढ़ने के अर्थ देशांतर जाने को शीघ्र ही उद्यमी भये, तब उनकी माता काश्यपी उनका विद्याभ्यास विषे अत्यंत आग्रह जान हितके अर्थ अपने पुत्रों को इस भांति कहती भई, कि हे पुत्रो राजगृह नगर विषे राजा सुबल के सुप्रभा नामा पटराणी है और हमारा भाई सूर्य मित्र पुरोहित है, कैसा है सूर्यमित्र, ज्ञान विज्ञान कर सहित है, और अति प्रवीण सकल पडितों विषे अग्रगामी है, और तुम्हारा मामा है, सो राजगृह विषे विद्यमान है, जो तुम दोनों के विद्याध्ययन विषे आग्रह है तो तुम दोनों शीघ्र ही जायकर सूर्यमित्र के समीप विद्याध्ययन करो, इस भांति माता के वचन प्रमाण कर वह दोनों ब्राह्मण विद्याके अर्थ कौशांवी नगरी से निकलकर अनुक्रम से राजगृह नगर में पहुंचे, वहां सूर्य मित्र द्विजोत्तम को मस्तक नवाय

नमस्कारकर इस भांति अमृत समान वचन कहते भये,हेमातुल,पूर्व पिताने हठकर विद्या पढाई,तो भी हम कुछ नहीं पढे, केवल घर विषे मूर्खही रहे, अब पिता के मरे पीछे राजा अति बलने हमारा पुरोहित पद सोमिल ब्राह्मण को दे दिया, और हम पद भ्रष्ट भये, और आजीविका से . भी रहित भये तब माता ने यहां तुम्हारे पास बहुत शास्त्र पढने को हम को भेजे हैं और तुम हमारे हितकारी हो इस भांति जानकर तुम हमको शास्त्र पढाओ ताकि नष्ट भया जो पुरोहितपद सो शास्त्रअभ्याससे हमारे फिर होजायगा,यह बचन सुनकर बुद्धिवान सूर्यमित्र अपने चित्त विषे इसभांति विचार करता भया, अहो यह दोनों भाई यथेष्ट खान पानादि के लोभ से पिता के पास विद्या नहीं पढे सो यदि मैं भी इन को यथेच्छ भोजन दूंगा तो यह दोनों शैलानी होजायेंगे, रंच मात्र भी विद्याध्ययन नहीं करेंगे, और विद्याध्ययन बिना इनके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी,इसभांति विचारकर सूर्यमित्र पुरोहित प्रकट कहता भया अहो द्विज पुत्र हो, मेरे तो कोई बहिन ही नहीं तब तुम दोनों विद्या हीन भाणजे कहां से भये, बहिन होवे तो भाणजेका होना संभव है सो बहिण बिना तुम भाणजे कहां से भये इस लिये तुम्हारी माता मेरी बहिन नहीं औरर तुम मेरे भाणजे नहीं पस यदि तुम अन्य ब्राह्मणोंके घर भिक्षा वृत्ति से भोजनकर यहां अध्ययन करो तो विद्या पढा दूंगा सो तुम विद्या के अर्थी हो तो मेरा कहना मानो अन्यथा मैं विद्या नहीं पढाऊंगा ऐसा कहने से वह दोनों भाई बोले हे, उपाध्याय सूर्यमित्र

तुमने जैसे कही वैसे ही करेंगे, इस भांति कह कर सूर्यमित्र के समीप बडे आदर से विद्याध्ययन करने का प्रारंभ करते भये, आलस्य रहित वह दोनों ब्राह्मण के पुत्र अनुक्रम से गिनती के दिनों में ही अनेक शास्त्रों को पढ़ कर महान् प्रवीण पंडित होगये अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर वह दानों भाई अपने घर आने को उद्यमी भये, तब सूर्यमित्र ने उनको वस्त्राभरण देय हर्ष कर ऐसे कहा, हे सामशर्म ब्राह्मण के नंदन अग्निभूत वायुभूत हो, मैं तुम्हारा निश्चय से हितकारी मामा हू सो अगर मैं यहां तुम को सोमशर्म की तरह यथेच्छ रमणीक खान पानादि देता तो तुम पूर्ववत कौतक विषयाशक्त भये थके विद्याध्ययन न करते मूर्ख ही रहजाते यह विचारकर मैंने विद्याध्ययनकी सिद्धि के अर्थ भिक्षा बृत्ति से तुम को दुखित किये, कैसा हूं मैं तुम दोनों का हित का बांछक हूं, यह बचन सूय मित्र के सुन कर अति हर्षाय मान होय बडा भाई अग्निभूत सूर्यमित्र की प्रशंसा करता भया कि हे वुद्धिवान सूर्य मित्र, तुम तो हमारे पिता समान दूजे हितकारी पिता हो तुमने ज्ञान दान से यहां हमरा पंथ हितकारी अनुष्ठान किया, और यह मनुष्य जन्म सफल किया और जीव ने का उपाय दिया, विद्यादान के सिवाय और दान श्रेष्ठ नहीं है और विद्यादान के दातार के सिवाय पृथ्वी विषे और कोई श्रेष्ठ दातार नहीं है, सो जो कृतघ्नी मूर्ख विद्या दान का दातार जो उपाध्याय उस का किया कल्याण का कारण उपकार नहीं माने हैं उन पापियों की समस्त विद्या पाप से नष्ट होय है, और

मूर्खपन की प्राप्ति होय है और परभव विषे नरकादिक गति होय है उसी समय दूसरा भाई दुराचारी वायुभूत सूर्यमित्र गुरु पर कोपायमान होय अपनी दुर्गति की करणहारी गुरु की बड़ी निंदा करता भया, रे सूर्य मित्र! रे अधम! रे दरिद्री! तू चांडाल समान है, रे दुराचारी! तैंने बलात्कारे घर घर भिक्षा मंगा मंगा कर हम को विद्या पढाई ॥

"अब कारण पाय ग्रन्थ करता आचार्य यहां कहे हैं, अहो भव्य जीवहो, देखो एक माता के उदर से उत्पन्न भये जो अग्निभूत वायुभूत दोनों भाई उन विषे महान अंतर है देखो अग्निभूत ने तो गुरु की प्रशंसा करी और वायुभूत ने गुरु की निंदा करी इससे यह जानिये है कि प्राणियों के कर्मों की गति विचित्र है" ॥

अब वह दोनों भाई राजगृह नगरसे कौशांबीपुर आयकर राजा अतिबल को आशीर्वाद देय अमृत समान बचन कह कर अपने शास्त्राभ्यासकी कुशलता प्रकाशी, सो नृपने आदर पूर्वक उन को अपना पुरोहित पद फिर दुबारा दिया सो यह दोनों भाई अपना पुरोहित पद अंगीकार कर बडी संपदा सहित आनंद से कौशांबी पुर विषे तिष्ठते भये, यह कथा तो यहां ही रही ॥

अथानन्तर—एक दिन राजगृह नगर का राजा सुबल स्नान के अवसर विषे अपनी देदीप्यमान मणियों कर जडित स्वर्ण मई मुद्रिका तैलमर्दन के अवसर मंद क्रांति होने के भय से सूर्यमित्र

को दी, तब सूर्यमित्र उस मुद्रिका को अंगुरी विषे धारण कर अपने घर आया। वहां ब्राह्मण के स्नान सन्ध्या तर्पणादि कर्म कर और भोजन कर फिर राज मंदिर जाय था, सो उस मुद्रिका को अंगुरी विषे नहीं देख कर अत्यंत खेद खिन्न भया, तब मुद्रिका के जानने निमित्त परमबोध नामा निमित्त ज्ञानी को बुलाय कर इस भांत पूछी अहो निमित्तज्ञानी हो रत्न जड़ित स्वर्ण मई मुद्रिका अंगुठी मेरे हाथ में से जाती रही सो कृपा करके यह बतलाइये कि पावेगी या नहीं। तब पुरोहित के प्रश्न से निमित्त ज्ञानी अपने निमित्त को विचार कर कहता भया। हे सूर्यमित्र ! तुझे उस मुद्रिका का अवश्य लाभ होगा, ऐसे कह कर निमित्त ज्ञानी तो अपने घर गया, परन्तु सूर्यमित्र पुरोहित शोक कर खेद खिन्न अपने महल में तिष्ठे था। उस समय उस नगर के बाहर उद्यान विषे चतुर्विध संघ सहित सुधर्म नामा आचार्य पधारे, यह सुन कर पुरोहित अपने चित्त विषे विचारी कि यह ज्ञानी मुनि ज्ञान नेत्र कर मुद्रिका को प्रत्यक्ष बता देंगे, इस से गुप्त रूप से एकाकी जाय कर इन को पूछूं, कैसे हैं सुधर्माचार्य ? अनेक भव्य जीवों को सम्बोधने वाले हैं, और इंद्र नरेन्द्र नागेन्द्रों कर सेवनीक हैं चरण युगल जिन के, तीन ज्ञानादि अनेक गुणों के धारक समस्त जीवों के हितकारी हैं और जगत कर वन्दनीक जगत विषे श्रेष्ठ समस्त जगत के स्तुति करने योग्य हैं, सो पुरोहित सूर्यमित्र पुण्य के उदय कर काल लब्धि के योग से दिन के अस्त होने के अवसर मुद्रिका के पूछने के निमित्त शीघ्र ही बन विषे

सुधर्माचार्य के समीप गया, वहां ज्ञानबृद्धि आदि अनेक गुणों के आकर और शरीरादिक विषे निर्मोही मोक्ष के साधन विषे लवलीन ऐसे योगीश्वर को देख कर लज्जा और अभिमान के योग से प्रश्नकर करने को असमर्थ और कार्यका अर्थी ऐसा जो पुरोहित सो कार्य्य की सिद्धि के अर्थ मुनि के चहुंओर भ्रमण करे। सो उस को वह परोपकारी योगीश्वर अवधि ज्ञान के योग कर अत्यंत निकट भव्य जान इस भांति अमृतमय बचन कहते भये। कि हे सूर्यमित्र ! नृप की रमणीक मुद्रिका को कर की अंगुरी से गेर कर चितातुर भया थका तू यहां मेरे पास आया है, तब सूर्यमित्र अपने मनमें यह विचारता भया कि जो समस्त कार्य्य मेरे चित्त विषे थे सो सारे बिना कहे मुनि ने बतला दिये तब सूर्यमित्र अपने हृदय विषे बहुत आश्चर्य को पायकर शीश नवाय मुनि को नमस्कार कर ऐसे पूछता भया। हे ज्ञानिन् जहां मुद्रिका पड़ी होय सो मुझे कहो, तब वह ज्ञानरूप नेत्र के धारी सुधर्माचार्य इस भांति कहते भये। हे धीमन (बुद्धिमान)! तेरे महल के पिछाड़ी बाग के मध्य सरोवर की पाल पर खड़ा रह कर तू सूर्य को अर्घ देवे था तब तेरे कर की अगुरी से निकस कर मुद्रिका सरोवर के जल में कमल की कर्णिका विषे शीघ्र ही पड़ी, अबार अदृश्य विद्यमान है, इस से हे भद्र मुद्रिका संबंधी शोक छोड़, और मेरे बचन विषे निश्चय कर इस भांति मुनि के बचन सुन कर जहां मुद्रिका बताई थी, वहां जाय तैसे ही मुद्रिका कर्णिका विषे पड़ी देख मुद्रिका को ग्रहणकर हर्षायमान होय राजा की भेटकर विस्मय

है, ज्ञान नेत्र से ही समस्त वस्तु यथावत जानी जाय हैं, और ज्ञान का फल समस्त कर्मों का अत्यंत क्षय रूप मोक्ष है, और मैं भी ज्ञानही विषे निरंतरमन लगाऊं हूं इस लिये हे ज्ञान तू मुझे ज्ञानी कर ॥

इति श्री सकल कीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ उसकी देश भाषामय वचनिका विषेसूर्यमित्र पुरोहित के दीक्षा ग्रहण का वर्णन जिस में हैं ऐसा चौथा सर्ग समाप्त भया ॥



५पांचवां अधिकार

(नागश्री के भवों का वर्णन)

चौपाई—बाहिरभ्यंतर परिग्रह छार। गुणसंयुत धारी अविकार।
सकल शिरोमणि तिहु जग बंद। पणमूं अध्यापक गुणवृन्द।

अथानंतर—यह सूर्यमित्र मुनि सुधर्माचार्य सहित ग्राम, खेट, पुर, अटवी आदि अनेक देशों में विहार करते अनुक्रम से इस चंपापुरी में आये, सो यह पुरी भगवान् वासपूज्य द्वादशम तीर्थंकर की निर्वाण भूमि है, इसके तीन प्रदक्षिणा देय स्तुति कर नमस्कार किया तब यहां निर्वाण भक्ति कर

सुधर्माचार्य के समीप गया, वहां ज्ञानबृद्धि आदि अनेक गुणों के आकर और शरीरादिक विषे निर्मोही मोक्ष के साधन विषे लवलीन ऐसे योगीश्वर को देख कर लज्जा और अभिमान के योग से प्रश्नकर करने को असमर्थ और कार्यका अर्थी ऐसा जो पुरोहित सो कार्य्य की सिद्धि के अर्थ मुनि के चहुंओर भ्रमण करे। सो उस को वह परोपकारी योगीश्वर अवधि ज्ञान के योग कर अत्यंत निकट भव्य जान इस भांति अमृतमय बचन कहते भये। कि हे सूर्यमित्र ! नृप की रमणीक मुद्रिका को कर की अंगुरी से गेर कर चिंतातुर भया थका तू यहां मेरे पास आया है, तब सूर्यमित्र अपने मनमें यह विचारता भया कि जो समस्त कार्य्य मेरे चित्त विषे थे सो सारे बिना कहे मुनि ने बतला दिये तब सूर्यमित्र अपने हृदय विषे बहुत आश्चर्य को पायकर शीश नवाय मुनि को नमस्कार कर ऐसे पूछता भया। हे ज्ञानिन् जहां मुद्रिका पड़ी होय सो मुझे कहो, तब वह ज्ञानरूप नेत्र के धारी सुधर्माचार्य इस भांति कहते भये। हे धीमन (बुद्धिमान)! तेरे महल के पिछाड़ी बाग के मध्य सरोवर की पाल पर खड़ा रह कर तू सर्य को अर्घ देवे था तब तेरे कर की अंगुरी से निकस कर मुद्रिका सरोवर के जल में कमल की कर्णिका विषे शीघ्र ही पड़ी, अवार अदृश्य विद्यमान है, इस से हे भद्र मुद्रिका संबंधी शोक छोड़, और मेरे बचन विषे निश्चय कर इस भांति मुनि के बचन सुन कर जहां मुद्रिका बताई थी, वहां जाय, तैसे ही मुद्रिका कर्णिका विषे पड़ी देख मुद्रिका को ग्रहणकर हर्षायमान होय राजा की भेटकर विस्मय

को प्राप्त भया। सूर्यमित्र पुरोहित चित्त विषे इसभांति विचारता भया अहो यह मुनिराज प्रत्यक्ष सर्व के ज्ञाता ज्ञानी पुरुषों के मध्य अनुपम महा ज्ञानी हैं, और भूमि विषे समस्त निमित्त ज्ञानियों के मध्य सारभूत यह ही निमित्त ज्ञानी हैं, इस कारण से इस मुनीन्द्र का आराधन कर जिस निमित्त ज्ञान से प्रत्यक्ष मुद्रिका बताई तिस निमित्त ज्ञान की प्रार्थना करूं, उस निमित्त ज्ञान कर सतपुरुषों और पंडितों के मध्य मेरी बड़ी विख्यातता होयगी, और महान् ऐश्वर्य का लाभ होयगा, लोक विषे मानता होयगी, और परम पद का लाभ होयगा। इस भांति विचार कर अति लोभी सूर्यमित्र सर्व से गुप्त रूप निमित्त ज्ञान सीखने को सधर्माचार्य के समीप गया, वहां योगीराज को हाथ जोड़ सिर निवाय प्रणाम कर भले बचन से प्रार्थना करी। हे भगवन्! हे कृपानाथ !! प्रत्यक्ष अर्थ को प्रकाशिनी अति दुर्लभ यह विद्या मुझे देवो, तब वह सुधर्माचार्य अवधिज्ञानी सूर्यमित्र के हित के इच्छक सूर्यमित्र को बोले। हे भद्र! यह प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी परम विद्या निर्ग्रंथ ज्ञानी मुनि बिना और के प्रकट परिणित को नहीं प्राप्त होय है। और पुरुष के सिद्ध नहीं होय, सो तू भी विद्या का अर्थी है तो मुझ समान निर्ग्रंथ होजा। यह बचन सुधर्माचार्य के सुन कर सूर्यमित्र अपने घर जाय समस्त परिवार को बुला निर्ग्रंथ भेष की सिद्धि के अर्थ इस, प्रकार प्रार्थना करता भया। अहो सज्जन पुरुषो! सुधर्माचार्य के निकट प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी प्रत्यक्ष चमत्कारिणी महा विद्या है, परन्तु निर्ग्रंथ भेष बिना

यह विद्या हम को देवे नहीं इस से विद्या के लाभ के अर्थ निर्ग्रंथ होकर छल से विद्या को ले अपना कार्य कर शीघ्र ही मैं वापिस आऊंगा, यहां मेरे वियोग से तुम को 'चमात्र भी शोक करना योग्य नहीं है, तब वह सज्जन विद्या के लोभ से सूर्यमित्र को बोले। हे सूर्यमित्र! जो तुम ने विचारी सोई नीकी है, परन्तु विद्या का लाभ भये पीछे अटकियो मत, तुरत ही आजाइयो ॥

इस भांति विचारकर सूर्यमित्र पुरोहित तुरत ही मुनि के समाप जाय सिर नवाय प्रणाम कर केवल विद्या के लाभ के निमित्त इसभांति कहता भया। हे भगवन्! मेरे विद्यालाभ की सिद्धि के अर्थ निर्ग्रंथ मुनि का भेष आदि जो कर्तव्य हो सो करके मुझे शीघ्रही प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी कल्याण रूपणी विद्या देवो। तब उन सुधर्माचार्य भावीकाल संबंधी समस्त पदार्थों के ज्ञाता ने, वाह्याभ्यंतर चौबीस प्रकार परिग्रह का त्याग कराय सूर्यमित्र ब्राह्मण को सुरशिव संपदा के कारण सारभूत अठाईस मूल गुण सहित भगवती दीक्षा दीनी, कैसी है दीक्षा? तीन जगत के जीवों कर बंदनीक है, और तीन लोक के सुख की करणहारी है, उस ही समय वह सूर्यमित्र पुरोहित सुधर्माचार्य को नमस्कार कर यह प्रार्थना करता भया। हे भगवन्! कृपा करके अब मुझे प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी विद्या देवो। तब सुधर्माचार्य बोले। हे धीमन क्रिया! कलाप आदि अनुयोगों के अभ्यास किये बिना वह विद्या सत पुरुषों को भी सिद्ध नहीं होय है, यह बचन सुन कर सुबुद्धि सूर्यमित्र पुरोहित ने बड़े उद्यम कर

गुरु के पास चारों अनुयोग पढ़ना प्रारंभ किया, वहां प्रथम ही परम पुनीत जो त्रेसठ शलाका पुरुषोंके पूर्व भव और सुख,आयु,कायविभूति आदि का प्ररूपक और धर्मका कारण ऐसा जो प्रथमानुयोग उसको पुण्य पाप के फल की प्रकटता के अर्थ पढ़ता भया, और लोक अलोक के विभाग को तथा लोकालोक के आकार विशेष का प्ररूपक और सात नरक आदि चारों गति के दुःखादिक का प्ररूपक और स्वर्गादिक के सुख संपदा का प्ररूपक ऐसा जो सकल वस्तु तत्व के दिखाने को दीपक समान करुणानुयोग सिद्धांत सो गुरु के मुख से अध्ययन किया, फिर मुनि श्रावकों की क्रिया, आचार गुण और जघन्य मध्यम उत्कृष्ट श्रावक के तीन भेद, तथा महाव्रत, अणुव्रत, अठारह हजार शील के भेद चौरासी लाख उत्तर गुण तथा तीन गुण व्रतचार शिक्षा व्रतरूप श्रावक के सात शील भेद और इन के स्वर्ग मोक्षादिक फल आदि जिस विषे निरूपण किये ऐसा जो सिद्धांत सो चरणानुयोग श्रीगुरु के बचन कर नीके अभ्यास किया, फिर जिस विषे षट् द्रव्य, सप्ततत्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय आदि समस्त पदार्थों का संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित सांचे लक्षण और जैन दर्शन कहिये सम्यक्‌दर्शन अथवा जिनमत का सांचा स्वरूप तथा एकांत, विपरीत, विनय, संशय, अज्ञान रूप पंच भेद मिथ्यात का निराकरण और सांचे झूठे मत के देव, गुरु धर्मादिक की परीक्षा ही होय ऐसा परमोत्तम द्रव्यानुयोग श्रीगुरु के पास बहुत नीके अभ्यास किया, सो सूर्यमित्र मुनि द्रव्यानुयोग

के अभ्यास करने से उत्तम सम्यग्दृष्टि होकर हेय जो तजने योग्य और उपादेय जो ग्रहण करने योग्य जे अन्यमत कर कहे और जिनमत कर कहे पच्चीस सोलह और सात तत्व नव पदार्थ जिन के शुभाशुभ लक्षण धर्म अधर्म के भेद और जिनमत तथा अन्यमत के भेदों को भले प्रकार जान कर महा बुद्धिवान निर्मल चित्त विषे इस भांत प्रकट विचार करता भया। अहो, श्रीजिनेन्द्र देव के मुख से प्रकट भया। और स्वर्ग मुक्ति के सुख का कारण ऐसा जिनमत ही यह सारभूत जगत पूज्य सांचा दीखे है, और अन्य मतियों कर कल्पना किये बहुत निंदनीक जे अन्य मत वह हालाहल समान अनेक जन्म विषे प्राणों के घातक हैं, अब मुझ को नरक निगोद के कारण भाषे हैं और सर्वज्ञ देव कर कहे सम्यक्ज्ञानके कारणभूत यह जीवादि समस्त पदार्थ मुझको सार सहित भासे हैं, और कुमार्ग गामियों कर कहे कल्पित यह खोटे तत्व झूठे महान पाप के कारण मैंने अज्ञान से वृथा ही अभ्यास किये मति श्रुति है नाम जिनके ऐसे परोक्ष दो ज्ञान जगत के हितकारी केवल ज्ञानवत लोकालोक संबंधी समस्त पदार्थों को परोक्ष प्रकाशे हैं, और यहां ही जिसकर समस्त मूर्तीक द्रव्य और जीवोंके भवांतर प्रत्यक्षपणे साक्षात् देखिये हैं, ऐसा अवधि ज्ञान है, तिस देशावधि, परमावधि, सर्वावधि कर तीन भेद हैं, उन विषे देशावधि ज्ञान तो चारों ही गति विषे सम्यग्दृष्टि जीवों के भव प्रत्यय अथवा अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उपजे है, और परमावधि सर्वावधि ज्ञान तद्भवमोक्षगामी भावलिंगी

मुनिजनोंही के उत्पन्न होय है, अन्य जीवों के नहीं होय हैं और रूपी द्रव्यों के सूक्ष्म तत्त्व के प्रत्यक्ष दिखाने को दीपक समान मनः पर्ययज्ञान भावलिंगी निर्ग्रंथ मुनीश्वरों के ही होय है और द्रव्यलिंगी मुनियों के कुमति कुश्रुत विभंग ज्ञान होय है सम्यग्ज्ञान कभी भी नहीं होय है और चार घातिया कर्मों के नाश से केवल ज्ञान प्रकट होय है, कैसा है केवल ज्ञान त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जाने है, यह केवल ज्ञान त्रिलोक दीपक आत्मा का निज स्वरूप है, यह पांच भेद सम्यक्ज्ञान समस्त पदार्थों के प्रकाशक हैं, इन ज्ञानों के देने को लोक विषे कोई भी किसी को समर्थ नहीं हैं, ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से अथवा क्षय से योगीश्वरों के यह पांच ज्ञान स्वयमेव प्रकट होय हैं तहां चार ज्ञान तो ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होय हैं, और केवलज्ञान चार घातिया कर्मों के क्षय स होय हैं, यह मैंने आत्म हित के अर्थ भला उत्तम कार्य किया जो अवधि ज्ञान के लोभ कर महान संयम ग्रहण किया, जैसे कंद मूल को हेरते हेरते निधि का लाभ होय तैसे ख्याति पूजा के लोभ से मेरे दीक्षारूप निधिका लाभ भया,और यह सुधर्माचार्य जो समस्त जीवों के हित के वांछक हैं ज्ञान की आज्ञा रूप भला उपाय कर मुझ को भगवती दीक्षा दई, कैसी है भगवती दीक्षा समस्त जगत् की हितकारिणी है, इस दीक्षा कर आज मैं कृत्य कृत्य हूं, और मोक्षमार्गी हूं और समस्त पापों कर रहित पवित्र मैं आज तीन जगत कर पूज्य भया इस संसार विषे अनादि काल से दुर्लभ ऐसी यह

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र की एकता रूप जो बोधि सो महान् उदय कर जिन शासन विषे मैंने पाई, हमारे भुक्ति मुक्ति के दायक निर्दोष अर्हंत देव हैं, अनन्त गुणों का आकर और तीन जगत का नाथ ऐसा अर्हंत देव मैंने काल लब्धि से पाया है और दुस्तर संसार समुद्र के तिरबे को अथवा भव्य जीवों को तारने को समर्थ ऐसा निर्ग्रंथ गुरु मैंने बडे. पुण्य के उदय कर पाया है कैसा है निर्ग्रंथ गुरु ? धर्म रूप हैं बुद्धि जिसकी इस संसार विषे मिथ्यामार्ग में तिष्ठते थके मेरे इतने दिन वृथा ही भये, और स्नान संध्या तर्पणादि विषे मेरे केवल संक्लेश ही भया ये जीव मिथ्यादृष्टि जिन धर्म र पराङ्मुख देव कर ठगे थके धर्म के अर्थ कुमार्ग विषे वृथा ही खेद खिन्न होय हैं इससे तीन लोक विषे सारभूत ऐसा जिन शासन मैंने अति दुर्लभ पाया सो मैं आज महान पुण्य वान भया और आज मैं धन्य भया और आजही मैं मोक्ष मार्ग विषे गमन करण हारा भया, जैसे जोतिषी देवों विषे श्रेष्ठ सूर्य है और धातुओं के मध्य स्वर्ण की खानि श्रेष्ठ है और पाषाणों विषे चिंतामणि परम श्रेष्ठ है, वृक्षों में कल्प वृक्ष, स्त्री पुरुषों के मध्य शीलवान स्त्री पुरुष, धनवान पुरुषों में दातार, तपस्वियों में जितेंद्री पुरुष, और पंडितों में ज्ञानी जीव, उत्तम आचरण के धारी श्रेष्ठ हैं तैसे समस्त धर्मों के मध्य श्रीजिनेंद्र कर भाषित दया मई धर्म परमश्रेष्ठ है, और समस्त मार्गों में श्रीजिनेंद्र कर भाषित निर्ग्रंथ भेष रूप जिनेंद्रमार्ग ही उत्तम श्रेष्ठ है, जसे गऊ के सींग से दूध और, सर्प के मुख से अमृत

और अनाचार (कुकर्म) से यश, मान से महंत पणा कदाचित् भी नहीं, पाइये है, तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्मके सेवनसे कुमार्ग विषे प्रवर्तने से और खोटे शास्त्रों के अध्ययनसे श्रेय कहिये कल्याण और शुभ कहिये पुण्यकर्म और शिव कहिये मोक्ष कदाकाल भी नही पाइये ॥

इत्यादिक चिंतवन करने से सूर्यमित्र मुनिराज अत्यंत दृढ़ वैराग्य को पायकर और कर-तल की रेखा समान समस्त हेयोपादेय वस्तुओं को जान कर और सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से बारह प्रकार संयम विषे लवलीन होय कर जिन शासन विषे कहे जे व्रत और तप उनके पालने को उद्यमी भये, इस भांति ज्ञानाभ्यास कर सूर्यमित्र मुनिराज इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर पूजनीय भये, कैसे हैं, सूर्यमित्र मुनिराज ? सम्यग् ज्ञानादि, अनेक गुणों की है, निरंतर बढवारी जिनके, और तीन लोक विषे विख्यात है कीर्ति जिन की और सम्यग् दर्शन, सम्यगज्ञान, सम्यक् चारित्र की एकता रूप जो मोक्ष मार्ग उस विषे अतिचार रहित है गमन जिनका ऐसे परमोत्कृष्ट भये ॥

इस लिये हे भव्य जीव हो, तुम भी ऐसे जानकर बड़े आदर से सकल शास्त्रों का अध्ययन करो, समस्त पापों का विनाश करनहारा और पुण्यका निवास यह सम्यग्ज्ञानहै, और ज्ञानवानपुरुषही ज्ञान का आश्रय करे हैं और शिवरमणीके चरणारविन्द ज्ञान करही अवलोकन करिये है इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्र, ज्ञान ही के अर्थ शीश नवाय नमस्कार करे हैं, समस्त जीवों के ज्ञान को टार अनुपम दूजा नेत्र नहीं

है, ज्ञान नेत्र से ही समस्त वस्तु यथावत जानी जाय हैं, और ज्ञान का फल समस्त कर्मों का अत्यंत क्षय रूप मोक्ष है, और मैं भी ज्ञानही विषे निरंतरमन लगाऊं हूं इस लिये हे ज्ञान तू मुझे ज्ञानी कर॥

इति श्री सकल कीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ उसकी देश भाषामय वचनिका विषेसूर्यमित्र पुरोहित के दीक्षा ग्रहण का वर्णन जिस में हैं ऐसा चौथा सर्ग समाप्त भया॥



५पांचवां अधिकार

(नागश्री के भवों का वर्णन)

चौपाई—बाहिरभ्यंतर परिग्रह छार। गुणसंयुत धारी अविकार।
सकल शिरोमणि तिहु जग बंद। पणमूं अध्यापक गुणवृन्द।

अथानंतर–यह सूर्यमित्र मुनि सुधर्माचार्य सहित ग्राम, खेट, पुर, अटवी आदि अनेक देशों में विहार करते अनुक्रम से इस चंपापुरी में आये, सो यह पुरी भगवान् वासपूज्य द्वादशम तीर्थंकर की निर्वाण भूमि है, इसके तीन प्रदक्षिणा देय स्तुति कर नमस्कार किया तब यहां निर्वाण भक्ति कर

सहित सुधर्माचार्य के साथ मोक्ष के अर्थ और मोक्ष को प्राप्त भये जो सिद्ध परमेष्ठी उनके गुणग्राम की भावना के अर्थं प्रदक्षिणा सहित भक्ति करनेके अवसर अंतरंग विषे परिणामों की विशुद्धता निमित्त अज्ञान रूप तिमिर का घातक और त्रिलोक विषें समस्त मूर्तीक द्रव्यों का प्रकाशक जगत विषे उत्तम ऐसा अवधिज्ञान सूर्यमित्र महामुनिके स्वयमेव प्रकट भया ॥ अहो भव्य जीव हो, निर्वाञ्छक शांत परिणामी वीतरागी मुनियों के अवधिज्ञान तप के प्रभाव कर अनेक ऋद्धि स्वयमेव प्रकट होय है, इस में कुछ भी संशय नहीं ज्ञान विज्ञान कर परिपूर्ण अनेक गणों के सागर रत्नत्रय कर विशुद्ध है आत्मा जिनका, सकल संघ के भार विषे समर्थ, महातपस्वी, महाध्यानी अतिचार रहित पंच महाव्रत के धारक पांचों इन्द्रियों के विजई महाशीलवान योगियों में प्रधान शांत है परिणाम जिनके, समस्त जीवों के हित के बांछक सांसारिक सुख विषे वांछा रहित ऐसे सूर्यमित्र मुनिराज बड़े गुणों कर अनुक्रम से सकल शिष्यों के मध्य प्रधान शिष्य भये, तब पूर्वोक्त प्रकार गुणोंकर सहित सकल संघ विषे प्रधान सूर्यमित्र को अवलोकनकर और संघ के भार विषे समर्थ जान, सकल संघ की साख कर विधि पूर्वक सूर्यमित्र मुनि को आचार्य पद दे कर गुरु सुधर्माचार्य तो शिव सुख की सिद्धि के अर्थं आप एकाविहारी भये, सुधर्माचार्य एकाकी उग्रोग्र तप करते और ईर्यापथ कर अनेक देश पुर ग्रामादि विषे विहार करते, ध्यानाध्ययन विषे आसक्त, प्रमाद रहित, जितेन्द्रिय, मौन व्रत के

धारक महा धीर वीर अनुक्रम से वाणारसी आये, वहां वाणारसी के बाहर भूमि भाग विषे प्रासुक निर्जन्तु शुभ स्थान में आत्म ध्यान का अवलंबन कर सुधर्माचार्य मुनि योग धार तिष्टे, वहां आत्म ध्यान के योग कर शिव मंदिर की सीढ़ी समान क्षपक श्रेणी विषे आरूढ होय निर्मल शांत परणामी योगराज चार घातिया कर्मों को निर्मूल कर नव केवल लब्धि सहित केवल ज्ञान को प्राप्त भये, कैसा है केवल ज्ञान ? शिवरमणी के मुख अवलोकन को दर्पण समान है, तब वह केवली भगवान इन्द्रादिक देवोंकर केवलज्ञान कल्याणककी पूजाको पाय वहां ही अन्तिम शुक्ल ध्यानके बलसे अव शेष चार घातिया कर्मों का निपात कर देह को त्याग निर्वाण को प्राप्त भये। कैसा है निर्वाण ? लोक शिखर पर स्थिरीभूत अनंत गुणों का सागर है, और अवनाशी अनुपम सुखों की खानि है॥

अथानंतर-वह सूर्यमित्र मुनिराज सकल संघ के नायक धर्म की प्रभावना करते आत्मीक स्वाधीन अविनाशी सुख के अर्थ भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते पृथ्वी तल विषे विहार करते ईर्यापथ के पालक एक दिन भोजन के अर्थ कौशांबीपुरी विषे प्रवेश करते भये। वहां उन का भाणजा अग्निभूत वायुभूत का बड़ा भाई सोमशर्म ब्राह्मणका पुत्र धर्मात्मा, परम निर्ग्रंथ अपने गुरु सूर्यमित्र मुनिराज को दुर्लभ निधि समान देखअत्यंत हर्षायमान होय कहता भया॥ हेभगवन्!यहां तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, ऐसे तीन वार उच्चारण कर श्रीमुनि को पड़गाहता भया। दातार के सप्त गुण सहित

नवधाभक्ति कर सरस,मधुर,प्रासुक,ज्ञान ध्यानादिक की बृद्धिका दायक आहार दान अपने उपकार के अर्थ सूर्यमित्र मुनिराजको भाव सहित दिया,तब वह मुनिराज वीतराग परिणामोंसे भोजन कर आरम ध्यान के अर्थ उलटे बन को चलने लगे, तब उस समय नमस्कार कर अग्निभूत ने ऐसे बचन कहे, हे भगवन् ! मेरा छोटा भाई वायुभूत क्रोध मायादि अनाचार कर और तुम सरीखे महंत पुरुषों की निंदा कर निरंतर पाप का उपार्जन करे है, इस लिये हे भगवन् ! उस दुराचारी के संबोधवे के अर्थ उस के घर पधारो, क्योंकि तीन जगत के जीवों को संबोधवे को आप ही समर्थ हो, यह वचन सुन कर मुनिराज बोले। हे अग्निभूत ! उस वायुभूत के निकट कभी भी जाना योग्य नहीं है, क्योंकि वायुभूत स्वभाव ही से रुद्र परिणामी है, और हमारे दर्शन मात्र से निंदादिक कर दुख दाई है महान पाप को अंगीकार करेगा, उस पाप कर उस का जीव चिरकाल दुर्गति विषे भ्रमण करेगा, यह बचन मुनि के सुन फिर अग्निभूत बोला। हे स्वामिन् ! मेरे ही आग्रह से आप पधारो आप के संबोधवे से उस का कुछ होनहार है सो होवेगा, इस भांति अग्निभूत के आग्रह से त्रिलोकवर्ती जीवोंके हित विषे उद्यमी और समस्त जीवों पर है समभाव जिन के,ऐसे सूर्यमित्र मुनिराज अग्निभूत की साथ वायु भूत के घर गये, वह पापी दुराचारी वायुभूत मुनि को देख कर सूर्यमित्र जान पाप के उदय से कोप थकी कटुक दुर्वचन कर मुनि की ऐसे निंदा करता भया। रे सूर्यमित्र ! पहले तू कृपण, दुष्ट, महान

कुटिल परिणामी था, और हम दोनों भाइयों को भिक्षा के अर्थ घर घर भ्रमावे था, सो अब तू पा के उदयकर नग्न भया थका घर घर भ्रमण करे है, इत्यादिक कटुक दुर्वचन कहकर महामुनि की निंदा कर उस वायुभूत ने तिर्यंच गति का कारण निंद्य अशुभ पाप कर्म का बंध किया, सो जिसके जैसा शुभाशुभ गति होनहार है उसके वैसी ही सामग्री वहां मिल जाय है, उस के निवारण करने को कोई भी समर्थ नहीं है, वह योगी सूर्यमित्र मुनिराज उत्तमक्षमादिक गुणों कर सौम्यभाव की वृद्धि के अर्थ वायुभूत कृत आक्रोश परीषह को सहकर वहां से वनांतर को गये, तब धर्मात्मा अग्निभूत मुनि की निंदा सुन कर अत्यंत दुखी होय चित्त विषे संवेग को पाय कर समस्त विषयों विषे ऐसे चिंतवन करता भया। अहो यह अत्यन्त पापी, दुराचारी, पापबुद्धि, वायुभूत पाप कर्म के उदय से अपने दुर्गति की देनहारी इस सूर्यमित्र मुनि की निन्दा वृथा ही करी, अथवा इस वायुभूत का इस में क्या दोष है मैं पापी पापात्मा ही जो नहीं आवते भी मुनि को हठ से वायुभूत के घर लाया, कैसे हैं मुनि ? भावीकाल संबंधी समस्त शुभाशुभ होनहार के ज्ञाता हैं, इससे मुनि की निंदा कर उत्पन्न भया जो पाप कर्म का बंध सो निश्चय कर मेरे ही भया। क्योंकि कृत, कारित, अनुमोदना कर पाप कर्म का बंध होय है, सो इस पाप की शुद्धि ताके अर्थ बंदिग्रह समान घर का और अपने शत्रु समान बंधुजनों को त्याग कर संयम ग्रहण करूं मेरे उस भाई कर कहा कार्य है, जो बीतरागी गुरुओं

की निंदा करे, और इस घर कर अथवा कुटुंब कर कहा प्रयोजन सधेगा जिन कर नाना प्रकार के पाप कर्मों का आश्रय होय है, अर्हंतदेव, निर्ग्रंथ गुरु और अर्हंत कर कहे, जो शास्त्र इन तीनों की भक्ति समान स्वर्ग मुक्ति का दायक संसार विषे और धर्म नहीं है और इन तीनों की निंदा समान नरक निगोद का दायक और दूसरा महान पाप नहीं है ॥

इस भांति विचार कर पुण्यात्मा अग्निभूत चित्त विषे दुगुणे वैराग्य को पाय कर संसार देह भोगों विषे उदास होय ग्रहवास का परित्याग कर बाह्याभ्यंतर चौबीस प्रकार के परिग्रह को छोड मन, बचन, कायकर, देवों को भी दुर्लभ ऐसा संयम, कर्मों की हानि के अर्थ पण्य के उदय से अंगीकार करता भया। अहो वह पाप भी यहां भला है, जिस पाप कर ज्ञानवान पुरुष संवेग को और मोह रूप बैरी के घातक महान तप संयम को प्राप्त होय ॥

अब अग्निभूत की स्त्री सोमदत्ता इस वृत्तांत को जान कर तुरत ही भर्तार के वियोग संबंधी शोक से मलिन मुख होय वायुभूत के समीप जाय शोक की शांति के अर्थ ऐसे कहती भई। हे वायुभूत! तैंने दुष्ट परिणाम से महामुनि की निंदा करी, तिस कर तेरा भाई अग्निभूत वैराग्य पाय कर मुनि भया। सो जब तक कोई न जाने तब तक अपन दोनों चल कर उसको समझाय कर ले आवें इस कार्य की सिद्धि के अर्थ तू मेरे साथ चल और जो हमारे चलने में दीर्घ काल लगेगा तो फिर तेरे भाई को

लाने को हम तुम दोनों समर्थ नहीं होंगे, इस भांति सोमदत्ता के बचन से महा क्रोधायमान होय कर क्रोधांध वायुभूत कोपकर अग्निभूत की स्त्री जो सोमदत्ता माता समान बडी भावज उसके मुख पर लात मारी, तब वायुभूत की लात की ताडना से सोमदत्ता स्वपर घातक क्रोध को पाय कर निंद्यकर्म का कारण जगत निंद्य इस भांति निदान करती भई, अरे दुराचारी,यहां तो मैं अबला कहिये निर्बल हूं, तेरे मुख पर उलटी लात देने को समर्थ नहीं, तथापि जन्मांतर विषे जैसी तैसी हूंगी तहां तेरी इस ही लात का स्तोक स्तोक खंडन करूंगी, भखूंगी ॥

अहो यह बडी आश्चर्य की वार्ता है, जो क्रोधकर आंधे दुराचारी पापी जीव हैं वह अपने और परके हिताहित को नहीं देखे हैं,ऐसे जानकर धर्म बुद्धि ज्ञानी पुरुषों को दोनों लोक का घातक और धर्म शर्म का विनाशक ऐसा शत्रु समान क्रोध,जो उसको क्षमारूप वाणों कर हनिवे योग्य है,॥

अब वायुभूत के मुनिराजकी निंदा करने से सातवें दिन अत्यन्त पाप कर्म के उदय से सर्व शरीर विषे महाघोर दुखों का एक निधान उदंबरजाति का महान कोढ भया जिस से महान व्याधि घोर दुखों का भोग आर्तध्यान प्रकट भया आचार्य कहे हैं, अहो जीवहो, महान पाप कर्म के उपार्जन कर पापी जीव इस ही भव विषे तत्काल नाना प्रकार के क्लेशों कर दुख को पावे हैं, और परभव विषे जो नरकादि संबंधी दुःख भोगवे हैं तिनकी कथा कहने को कोई भी समर्थ नहीं है ॥

अब वह वायुभूत उदंबर कोढ़ आदि व्याधि कर घोर दुःख को भोग आर्तध्यान कर प्राण छोड़ पाप के उदय से उस ही कौशांबी पुरी विषे गधी भई अहो भव्य जीव हो परम पवित्र, परमपूज्य अर्हंत देव, निर्ग्रंथ गुरु दया मई धर्म के निंदक जीवों के पाप के उदय से इस ही भव विषे भूत, भावी वर्तमान पुण्य कर्म का और सुख का नाश होय है,इस भांति जान कर भव्य जीवों को प्राणों का अंत होते भी अर्हंत देव निर्ग्रंथ गुरु, दया मई धर्म और अर्हंत कर कहे शास्त्र और धर्मात्मा श्रावक इन की निंदा का त्याग करना योग्य है ॥

अब वह गधी पापके उदय कर अति दुःखी नाना प्रकार के सैंकडों क्लेशों के दुःख और क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण संबंधी तीव्र वेदना और लोकों विषे पैंड पैंड पर काष्ठ पाषाण की ताडना आदि अनेक प्रकार के दुखों को भोग अल्प आयु के अंत मरण कर वहां ही कौसांबी विषे महा दुखी सूरा भई, सो वह सूरी स्वामी रहित जिसका कोई रक्षक नहीं, पराधीन, क्षुधा, तृषा आदि तथा लोगों की ताड़ना आदि अनेक प्रकार दुख को भोग कर बडे कष्ट से प्राणों का त्याग कर पाप के उदय से इस ही चंपापुरी विषे चांडाल के वाडे में कूकरी (कुत्ती) भई,कैसी है कूकरी ? महान घोर दुःख कर व्याकुल है और विकराल कहिये महा भयंकर है, मुख जिसका अत्यत क्रूर हैं परिणाम जिस के सो कूकरी पाप के उदय कर उस ही चांडाल के वाड़े में क्षुधा, तृषा,शीत, उष्ण संबन्धी नाना प्रकार के

दुखों को भोगती लोगों की ताड़ना कर अति कष्टसे प्राणछोड़ वहांही कौसांबीनामा चांडालीके जात्यंधा नामा चांडाली (चुहड़ी) पुत्री भई,कैसी है चांडाली? पापके उदय से दुःख कर परिपूर्ण है, शरीर जिसका और जन्महीसे आंधी और अत्यंत दुर्गंध भया है शरीर जिसका महा विकराल कुरूपकी धरनहारी भई॥

अथानंतर–उस अवसर विषे धर्म ध्यान में सावधान सूर्यमित्र अग्नि भूत दोनों मुनिराज पृथ्वी विषे विहार करते जहां वायुभूत का जीव जात्यंधा चांडाली भई थी वहां आये, सो सूर्यमित्र मुनिराज तो उपवासे थे सो वह तो बन विषे तिष्ठे, और अग्निभूत मुनि आहार के अर्थ उस नगरी में गये सो वहां जाते हुये मार्ग में बहुत वृक्षों के वीच जामूण के दरखत के तले बैठी दुःख कर पीडित उस चांडाली को देख उसके दुःख कर मुनि दुःखित भये और उस ही समय भवांतर के स्नेह से शोक कर अग्निभूतमुनि के नेत्र में बलात्कार अश्रुपात भर आये तब वहां से उलटे शीघ्र ही जाय अपने गुरु को नमस्कार कर इस भांति पूछते भये,हे महाज्ञानी एक चांडाली के दर्शन मात्र से मेरे नेत्रों विषे अश्रुपात भर आये, और मेरे अतिशय कर दुःख भया, सो इस शोकादि दुःख का कारण क्या है सो तुम कहो, तब सूर्यमित्र गुरु ऐसे कहते भये, हे धीमन, तेरा भाई कुबुद्धी वायुभूत हमारी निंदा संबंधी पापके उदय कर निरंतर दुख भोग लोक निंद्य तिर्यंच गति विषे भ्रमणकर यह सुख का लेश कर भी रहित जात्यन्ध चांडाली भई है, और पूर्व भव का स्नेह का संबंध से तेरे दुःख शोकादि भये हैं, इन

प्राणियों के भव भव विषे स्नेह और बैर पूर्व संबंध से प्रकट होय है, हे अग्निभूत इस चांडाली के कल्याण कारिणी अति निकट भव्यता आई है, सो सुन जो आज ही इसका मरण होयगा, इस लिये हे विचक्षण तुम शीघ्र ही जाकर न्यायके वचनसे उस चांडाली को पुण्यकी प्राप्ति के अर्थ श्रावक के व्रत पूर्वक संन्यास को ग्रहण कराओ। इस भांत सूर्यमित्र गुरु के वचन कर परोपकारी अग्निभूत शीघ्र ही जाकर जहां चांडाली तिष्ठे थी वहां प्राशुक भूमि पर तिष्ठ कर अमृत समान मधुर वचन कर ऐसे संबोधते भये हे पुत्रि, तू पाप कर्मके उदय से चांडाल संबंधी अत्यंत नीच कुल विषे घोर दुःख की भोगन हारी जन्मसे आंधी चांडालकी पुत्री चांडाली भई सो अब उस पाप कर्म की शांति के अर्थ और सुखकी प्राप्ति के अर्थ श्रावक का धर्म अंगीकार कर तिस धर्मकी सिद्धि के अर्थ मेरे कहनेसे मदिरा, मांस, मधु कहिये शहत और पंच उदंबर फल इन का त्यागकर और खाद्य स्वाद्य, लेय, पेय, आदि चतुर्विध आहार का त्याग करके पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत पूर्वक संन्यास मरण अंगीकारकर क्योंकि यहां आज ही तेरा मरण होयगा इस से सुखकी प्राप्ति के अर्थ अनशन व्रत कर शीघ्र ही कल्याण का साधन कर इस भांत अग्निभूत मुनिराज का वचन सुन कर वह जात्यंधा चांडाली चार प्रकार आहार का त्याग कर शीघ्र ही श्रावक के व्रत धार कर संन्यास अंगीकार करती भई, यह कथा सूर्य मित्र मुनिराज चंद्र वाहन राजा से कहे हैं कि हे राजन, जिस अवसर चांडाली ने संन्यास ग्रहण किया तिस अवसर

विषे इस नागशर्म ब्राह्मण की स्त्री त्रिदेवी, पुत्री की प्राप्ति के अर्थ उत्साह सहित नागों के पूजने को उसी रास्ते आरही थी, तब चांडाली मार्गके वशसे निकट आवती ब्राह्मण की स्त्री त्रिदेवी के वादित्रोंका नाद सुन कर यह निदान करती भई, अहो, व्रत संन्यास के फल कर इस त्रिदेवी ब्राह्मणी के मैं उत्तम पुत्री होऊं ऐसी प्रार्थना करूं हूं, इस सिवाय और शुभगति को नहीं याचूं हूं, जैसे कोऊ पृथिवी विषे अज्ञानी कुबुद्धि मूर्ख रत्न के बदले काच खरीदे और हाथी से गर्दभ को लेवे, और स्वर्ण देय लोहा लेवे, तैसे यह ज्ञान हीन जात्यंधा स्वर्ग संपदा का कारण जो व्रत संन्यास का फल पण्य कर्म ताकर निंद्य स्त्री पर्याय की हर्ष कर जाचना करी, इस से उस निदान के दोष कर इस नागशर्म ब्राह्मण के यह नागश्री नामा पुत्री भई है, कैसी है नागश्री ! व्रत के संस्कार की है वासना जिसके, सो वह नागश्री आज नागके पूजने को यहां आई थी, तब हम (सूर्यमित्र, अग्निभूत) ने पुत्री की बुद्धि कर इसको सम्यक्त सहित श्रावक के व्रत ग्रहण कराये, सूर्यमित्र मुनिराज कहे हैं, हे राजा चंद्र बाहन साधु का निंदक जो बायुभूत सोई पाप कर्म के उदय कर निंद्य तिर्यंच गति के चार भव विषे महाघोर दुख भोग कर यहां यह नागश्री भई है, हे राजन्, पाप कर्म के उदय कर तो जीव दुर्गति विषे भ्रमण करे है, और पुन्य कर्म के उदय कर शुभ गति को प्राप्त होय है, और पुण्य पाप रूप मिश्र भावकर मध्य गति जो मनुष्य गति उसे प्राप्त होय है, धर्मात्मा जीव धर्म के फल से इंद्र अहमिंद्र चक्रवर्ति पद के सुख भोगवे है, और

पापी जीव पाप कर्म के फल से नरक तिर्यंच गति के घोर दुख पावें हैं धर्मात्मा पुरुष धर्म के फल इंद्र नरेंद्र नागेंद्र तीर्थंकरादिक की संपदा पावे हैं, और पापी जीव पाप से महा दारिद्र पावे हैं जो तीन लोक विषे सार भूत सुख हैं वह समस्त सुख धर्मात्मा जीवों के धर्म के प्रभाव से प्रगट होय हैं और जो जगत विषे नाना प्रकार के दुःखों के समूह हैं, वह पापी जीवों के पाप के फल से उदय होय हैं धर्म के सेवन कर तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेव आदि उत्तम पुरुष होय हैं और पाप के उपार्जन कर दूसरों के दास किंकर घर घर के भिखारी, दीन याचक होय हैं जो वस्तु तीन लोक विषे दुर्लभ है अथवा दूर द्वीपांतर देशांतर विषे वर्ते है, वह समस्त मनोवांछित वस्तु धर्मात्मा पुरुषों के धर्म कर स्वयमेव प्राप्त होय है और पापी जीवों के पाप के उदय से हाथ में तिष्ठी हुई वस्तु भी नष्ट होजाय है इस भांत धर्मात्मा पुरुष धर्म के प्रभावसे सर्व उत्तम गति का पावे हैं, और पापी जीव पापके उदयसे संपूर्ण दुख की खानि जो नरक निगोदगति उसको प्राप्त होय हैं, इस भांत जान कर अहो भव्य हो मन बचन काय की शुद्धता कर सकल पापों को छोड कर स्वर्ग मुक्ति के सुखकी प्राप्त के अर्थ जिनेंद्र देव कर भाषित परमधर्म का सदा काल सेवन करो, धर्म है सो ब्रह्म कहिये लौकांतिक देव, नरेंद्र अमरेन्द्र पद का दायकहै, और मैं भी शुभ गतिके अर्थ सदा काल धर्म ही को सेऊं हूं, और धर्म करही अनुपम आत्मीक धर्म को आचरण करूं हूं, इस लिये हे धर्म तू मेरे संसार के दुःख को दूर कर ॥

का किंचित् अभाव से अंतरंग विषे शुद्धताको नहीं प्राप्त होय हैं जैसे मदिरा कर भरे घट को जल से वाहर सैंकडों वार धोवते धोवते भी अंतर्गत मदिरा के दोष से दुर्गंध रहित शुद्ध नहीं होय है तैसे ही अंतर्गत कषाय मल कर व्याप्त मिथ्या दृष्टि जीव वाह्य स्नानादि कर शुद्ध नहीं होय है, केवल नरक निगोद का दायक पाप कर्म ही का बंध करे है, मिथ्यात्व कषाय रूप प्रचुर मोह के मल कर लिप्त कहिये अत्यंत मलीन ऐसे मिथ्या दृष्टि जीव यहां गंगा, जमना, त्रिवेणी, गोदावरी, आदि नदी और पुष्कर, लोहागर आदि तलाव कूवे, कुंड, वावडी, और समुद्र आदि जल के निवाणों विषे स्नान से अपने शुद्धता की वांछा करे हैं वह अज्ञानी जीव बुद्धि के भ्रमण से तृषा की शांति के अर्थ भाडली के जल को पीवे हैं जैसे जेष्ठमास विषे अत्यंत तृषातुर मृगदूर से फूले कांस को देख जल के भ्रम से दौर कर तहां जाय हैं सो कांस से प्यास कैसे मिटे, केवल खेद खिन्न ही होय, तैसे मिथ्यात्व कर मलीन मिथ्यादृष्टि जीव गंगादिक तीर्थों विषे इतने दिन वृथा ही गमावे है, स्नान कर शुद्ध भया चाहे है सो केवल घोर पाप का बंध करे है शुद्ध नहीं होय है, शुद्धता तो मिथ्यात्वकषाय मल के अभाव भये ही होय है जल विषे स्नान किये से कदाचित् शुद्धता नहीं होय ऐसा तात्पर्य जानना हाय हाय ! मैं कुबुद्धि कर मिथ्या मार्ग विषे इतने दिन वृथा ही गमाये, अब मेरे कुमति का अभाव भया, सुमति की प्रगटता भई, तिससे पुण्य के उदय कर भले मार्ग को प्राप्त भया हूं और अब ही मैं पुण्यवान

भया हूं, धन्य भया हूं, जिससे इस सूर्यं मित्र मुनिराज के प्रशाद से अनादि काल से अति दुर्लभ अमौलिक ऐसा जैन धर्म मुझे प्राप्त भया है, इत्यादि नाना प्रकार चिंतवन के उपाय कर चित्त विषे द्विगुणित सं देनिर्वेद,को पाय सूर्यं मित्र मुनिराजके बचन रूप अमृतके पानसे बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह कर सहित मिथ्यात्व रूप विषको वमन कर नागश्री का पिता नागशर्म प्रोहत भगवती दीक्षा ग्रहण करता भया और उसही समय और बहुत ब्राह्मण सूर्यं मित्र मुनिराज के बचन से जिन धर्म का अद्भुत महात्म्य जान कर संसार देह भोगादि विषे परम वैराग्य को पायकर शीघ्र ही कुमार्ग को और बाह्य अभ्यंतर परिग्रहको त्याग कर मोक्षके अर्थ मुनीका संयम ग्रहण किया, और वह नागश्री अपने पूर्वभव सुन कर अनाचार के पाप से भयभीत होय और संवेगरूप आभूषण को पाय कर उसही समय एक सुपेद साडी बिना समस्त परिग्रहका त्यागकर बाल्यपणे में ही अति प्रवीण अर्जिका भई और नागशर्म प्रोहित की स्त्री त्रीदेवी आदि बहुत ब्राह्मणी भी जैन धर्म को सुनकर संसार देह भोग विषे वैराग्य को पाय मोहरूप वैरी का घात कर शीघ्र ही स्वर्ग मोक्षादिक की प्राप्ति के अर्थ परिग्रह का त्याग कर सार भूत सुखों की खान और मुक्ति की माता समान ऐसी भगवती दीक्षा अंगीकार करती भई और चंपापुरी का राजा चंद्रवाहन भी नागश्री की कथा के श्रवण मात्र से विषय भोगादि विषे उदास होय लोक पाल पुत्र को राज देय बहुत भव्य जीवों सहित मन, बचन कायकी शुद्धता कर मोक्ष के

अर्थ जिन मुद्रा को हर्ष से धारण करी और राजा चन्द्र वाहन की बहुत राणियां भी वैराग्य को पाय भरतार की साथ मोक्ष सुख के अर्थ शीघ्र ही आर्यका के व्रत आचारण किये, और अन्य भी पुरवासी बहुत लोक नागश्री की कथा रूप अमृत पान से मिथ्यात्व रूप विषका वमन कर और परम सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर कितनों ने तो मोक्ष की सिद्धि के अर्थ महाव्रत धारण किये, और कितनों ने अणुव्रत ग्रहण किये, और केईयों ने धर्म विषे महान श्रद्धा ही ग्रहण करी ॥

अथानन्तर–तिस पीछे वोह सूर्यमित्र मुनिराज बडे संघ सहित धर्म की प्रभावनाके अर्थ शीघ्र ही विहार करने को गमन किया और सूर्यमित्र गुरूके वचन कर वह समस्त नवीन दीक्षित शिष्य निरन्तर सावधान यत्ना चार से अग पूर्वादि समस्त श्रुत को पढ़ते भये, वह समस्त मुनिराज सूर्य मित्र गुरु कर सहित कर्म रूप वन विषे दावानल समान ऐसा वारह प्रकार घोर तप भव भोगरूप वैरी की शांति के अर्थ करते भये, और सूने घर, पर्वत की गुफा, पर्वत के शिखर पर्वतके दराडे और निर्जन गहन वन आदि स्थानों विषे ध्यान और अध्ययन की सिद्धि के अर्थ वह मुनि प्रमाद रहित निवास करते भये, और गमन करते वन पर्वत आदि स्थानों विषे जहां सूर्य अस्त होय तहां ही वह मुनि जीव दया के अर्थ कायोत्सर्ग कर तिष्ठते भये, और वह मुनि एकाग्रचित्त कर यत्न से निरंतर धर्म शुक्ल ध्यान को चिंतवे हैं, और आर्तरौद्रध्यान को कदे भी नहीं विचारे हैं और वह मुनि सदाकाल

भव्य जीवों को धर्म का उपदेश स्वाध्याय षट आदि शुभ कर्मों को कहे हैं और भोजन कथा स्त्री कथा आदि विकथाओं को कभी नहीं करे हैं ॥

और वह मुनि सारभूत अठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तर गुण और चंद्रमा समान उज्वल चारित्र को यत्न सहित मन, बचन, काय की शुद्धता कर अतिचार रहित पाले हैं और वह मुनि कलह, युद्ध, और स्त्रियों के रूप और मिथ्या दृष्टियों के स्थान, आदि के देखने विषे तो अन्ध समान हैं और अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, और अरहंत के प्रतिबिंब, निर्वाण भूमि आदि धर्म के स्थानों को अवलोकन करे हैं और वह ज्ञानी मुनि खोटे तीर्थ, खोटे स्थान, और खोटे मार्ग इन के गमन विषे पांगुला समान हैं, और निर्वाण भूमि आदि भले तीर्थ और भले गुरु यात्रा आदि धर्म कार्यों विषे गमन करन हार हैं, और वह मुनि स्त्री कथा आदि विकथा और पराई निन्दा आदि के करने विषे गूंगा समान हैं, और उत्तम पुरुषों की समीचीन कथा सिद्धांत और जीवादिक तत्वोंका स्वरूप आदि कहने विषे उत्साह सहित हैं, और खोटे शास्त्र, खोटी कथा, खोटे बचन, तिनके सुनने विषे बहरे समान हैं और सरवज्ञ कर कहे आगम और आत्म तत्वादि धर्म आदि के सुनने विषे सदा सावधान हैं, और वह मुनिराज परनिंदा कर रहित हैं और स्वाध्याय ध्यानादिक विषे निरंतर चित्त को लगावे हैं और पाप के लेशमात्र से अति भयभीत केवल मोक्ष ही के बांछक हैं, और वह मुनि घोरबीर उपसर्ग विषे निर्भय समस्त विकार

कर रहित परिषहों के सहने विषे महाधीर वीर हैं और पाप कर्म का बन्ध होने विषे बड़े कायर हैं, इत्यादि नाना प्रकार शुभ आचरण कर शोभायमान जीते हैं मोह रूप वैरी के सावंत जिन्होंने, बाह्य अभ्यंतर परिग्रह कर रहित सारभूत गुणों कर सहित तप ही है धन जिन के, ऐसे वह मुनिराज सूर्यमित्र गुरु कर सहित यत्न से नाना देश पुरग्रामादिक विषे विहार करे हैं, और वह नागश्री आदि समस्त आर्यका अनेक देश पुर ग्रामादिकन में विहार करती भई, कैसी हैं वह आर्यका शुभ है आशय जिनका और धर्म ध्यान विषे तत्पर सदा कालसिद्धांत के पढ़ने विषे है उद्यम जिन के, और हता है मोह, प्रमाद, और इंद्रियों की वांछा जिन्होंने, और व्रत शीलादि कर भूषित, आत्म कार्य के साधन विषे उद्यमी, पाप से भयभीत, सरल हैं परिणाम जिनके, और विकार रहित है भेस अंग जिनके, नाना प्रकार तपश्चरण विषे तत्पर अत्यंत निर्मल हैं ॥

अब सूर्यमित्र मुनिराज के दुद्धर तपश्चरण कर और परिणामों की अत्यंत विशुद्धता कर और अति निर्मल आचार संयम कर और धर्म शुक्लादि समीचीन भावों कर उग्र दीप्त आदिक सार भूत नाना प्रकार की रिद्धि स्वयमेव प्रगट होती भई, सो वह सूर्यमित्र मुनिराज संघ सहित पृथिवी विषे विहार करते और अनेक भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग विषे स्थापन करते धर्मोपदेश रूप अमृत की वरषा कर समस्त जीवों को तृप्त करते महन्त पुरुषों के गुरु एक दिन धर्म की प्रभावना के अर्थ

राजगृह नगर के समीप आय कर प्राशुक बन की भूमि विषे विराजे, उस अवसर विषे कौशांबी पुरी का राजा अतिबल सों राजगृह नगर का सुबल नामा राजा उस का काका सुबल के मिलाप को आय कर सुबल कर सन्मानित भया थका प्रीत कर उस ही राजगृह नगर विषे तिष्ठे था, तब वह सुबल अतिबल दोनों राजा धर्म के वांछक बनपाल के मुख से सूर्यमित्र मुनिराज का आगमन जान कर शीघ्र ही धर्म के अर्थ मुनिराज की बंदना का बन में गये, वहां तिष्ठते दीप्त ऋद्धि कर प्रकाशमान सूर्यमित्र मुनिराज को शीस नवाय प्रणाम कर हर्ष सहित प्रासुक अष्टद्रव्य कर भक्ति भाव से पूजन करी और उपमा रहित और समस्त दिशाओं के अंधकार के विनाशक ऐसे सूर्यमित्र मुनि के देह की दैदीप्यमान क्रांति देख कर राजगृह नगर का राजा सुबल बहुत विस्मय को प्राप्त भया और तपश्चरण का अतिशय देख हरषाय मान होय अपने हृदय विषे ऐसे चितवन करता भया। अहो ! यह सूर्यमित्र पुरोहित सर्व विप्रों में प्रधान मेरा दास समान शुभ चिंतक किंकर था, सो भगवती दीक्षा, और तपश्चरण के अनुपम फल से अनेक सूर्य समान दैदीप्यमान रूपवान महातेजस्वी महान ज्ञानी कांति कर प्रकाशमान सकल संघ विषे प्रधान ऐसा गुणवान सूरपद का धारक भया है, अहो इन पुण्यवंत महंत पुरुषों के इस तप संयम ध्यानादिक कर इस ही लोक विषे सत्कार और पूज्यपना और नाना प्रकार के चमत्कारों की प्रत्यक्ष दिखावनहारी अनेक महान ऋद्धि प्रगट होय

हैं परलोक विषे कैसी सारभूत विभूति संपदा और कौनसा उत्तम उच्च पद होयगा; इससे मैं अपने चित्त विषे ऐसी जानूं हूं कि इस तपश्चरण के फल से परलोक विषे इस से भी अधिक ऋद्धि संपदा पाइये है ऐसा मेरे निश्चय है। और जिस राज्य संपदाके त्यागन कर इस भव विषे और परभव विषे परम संपदा पाइये है, तो उस राज्य संपदा के छोड़ने में ज्ञानवंत पुरुषों के काल का विलम्ब कहां ? अर्थात् कुछ भी काल का विलंब नहीं है, इस भांत चित्त विषे विचार कर राजगृह नगर का राजा सुबल धर्म विषे और धर्म के फल विषे परमसंवेग को पाय और संसार देह भोगादि विषे अत्यंत उदास होय राज्य का अत्यंत पाप रूप भार को, और गृह बंधन के छोड़ने को और कल्याण रूप निर्मल तपश्चरण अंगीकार करने को उद्यमी भया, और उसी समय तप की प्राप्ति के अर्थ कौशांबी का राजा जो अतिबल उसे कहता भया। कि हे धीमन नृप ! अतिबल मगधदेश राजगृह नगर का परिपूर्ण राज्य त ग्रहण कर, मैं संयम अंगीकार करूं हूं, तब धर्मात्मा राजा अतिबल सुबल को कहता भया। हे राजन् ! जो महान दोष राज का तुम को दीखा सोई महान दोष विशेष सहित अब मुझे भी दिखाई दिया है और तप धर्म चारित्र के जो गुण तुम को दीखे वैसे ही गुण भेद विज्ञान रूप निर्मल नेत्र कर निश्चय सेती मुझे अधिक दीखे हैं॥ इससे तप संयमादिक गुणोंकी प्राप्ति के अर्थ में भी यह राज्य रूप पाप का भार छोड़ कर मुक्ति के राज्य के अर्थ तुम्हारे साथ ही तप संयम अंगीकार करूंगा,

ऐसे बचन कर अतिबल को राज्य सुख से पराङ्मुख जान राजा सुबल मीनध्वज पुत्र को राज्य संपदा देकर आत्महित के अर्थ अतिबलादिक बहुत राजाओं सहित राजा सुबल सर्व परिग्रह का त्याग कर शीघ्र ही सूर्यमित्र मुनिराज के समीप महामुनि भया, उस पीछे उन सर्व मुनियों कर सहित सूर्यमित्र मुनिराज धर्म की प्रभावना विषे उद्यमी जगत के बंधु सब के हित कारी, परमप्रवीण, मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति के अर्थ, भव्य जीवों के संबोधने के अर्थ पुरग्राम, बनादिक के विषे विहार करने को गमन करते भये ॥

अथानंतर-नागश्री आर्यका निज शक्ति प्रमाण यावज्जीव निर्दोष तप कर और अतिचार रहित भलीभांत संयम को पाल कर अंत विषे एक महीने की आयु शेष जान समाधिमरण की सिद्धि के अर्थ समस्त आहार का त्याग कर और शरीर से नेह का त्याग कर आनंद सहित संन्यास अंगीकार किया, और उस समय क्षुधा, तृषाआदि समस्त परीषहों को जीन और उपवास रूप अग्नि के सयोग कर शीघ्र ही शरीर को सुकाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चार आराधना का आराधन कर धर्म ध्यान विषे तत्पर यत्नाचार से समाधि मरण कर प्राणों का त्याग किया, निर्दोष तप संयम के प्रभाव कर सुखों की खान सोलवां जो अच्युत स्वर्ग उस विषे आकाश स्फाटिक मणि मई मनोहर पद्मगुल्म विमान विषे वह नागश्री का जीव दिव्यरूपवान पद्मनाभ

वह देव तप संयम से उपार्जनाकरी जो समस्त दिव्य सुखों की खानि ऐसी परम विमान संपदा को अंगीकार करते भये, यह देव सदा काल धर्म विषे तत्पर एक सौ सत्तर क्षेत्रों विषे, जाय कर धर्म के अर्थ तीर्थंकरों के पंचकल्याणक विषे समीचीन पूजा करे हैं, और अवशेष केवलियों की भक्ति कर ज्ञान और निर्वाण कल्याणक विषे पूजन करे हैं, तथा गणधर आचार्य उपाध्याय परमसाधु आदि समस्त मुनिराजों की पुण्य की उपजावन हारी पूजा करे हैं इत्यादिक अनेक शुभ आचरण कर पुण्य का उपार्जन करते वह देव पुण्य के प्रभाव से हजारों देवांगना कर सहित नाना प्रकार के भोगों को भोगते हैं, और देव लोक विषे रात दिन का विभाग नहीं है, और दुखदाई ऋतु नहीं हैं, सुखदाई सास्वता सुखमा सुखमा काल प्रवर्ते है, देव लोक विषे दीन, दरिद्री, निर्धन, रोगी, दुर्भागी, दुखी और जिस का बचन किसी को भी नहीं सुहावे ऐसा दुःखारी उन्मत्त कहिये मदोन्मत्त और विकलांग इत्यादि और भी अशुभ सामग्री स्वप्न विषे भी कदाकाल नहीं दीखे है, सो वह देव कैसे हैं, देवलोक विषे सर्व ही देव दिव्य लक्ष्मी मनोहर कांति अनुपम दिव्यधैर्य कर शोभायमान समस्त दुःखों कर रहित सुख रूप अमृत के समुद्र के मध्य प्राप्त भये हैं और वह पद्मनाभादि समस्त देव कैसे हैं, समस्त दुःखों कर रहित हैं और नेत्र नहीं टिमकारे हैं, महा प्रवीण सास्वत जिनेंद्र देव की पूजा विषे तत्पर हैं, सात धातु, सात उपधातु, मलमूत्र, पसेव, खेद कर रहित दिव्य देह के धारी हैं, और तीन

ऐसे वह सेठाणी विषाद नायका जो पुत्र के मुख रूप चंद्रमा का अवलोकन कर सदा प्रसन्न रहे हैं, मुनि श्रावक देवन कर करे, एक दिन तीन ज्ञान आदि अनेक गुण रत्नों के सागर, जगत के हितकारी, मुनि श्रावक देवन कर वंदित, कल्याण रूप संघ कर सहित, ऐसे वर्द्धमान नामा मुनिराज धर्मात्मा जीवों के पुण्य कर प्रेरे भव्य जीवों के संबोधने को उज्जयनी के बन में आये, उन के आगमन को जान कर राजा वृषभांक आनंद घोषणा दिवाय चतुरंग सेना कर वेष्टित मुनिराज के बन्दने को निकला, राजा की भेरी का शब्द सुन कर यशोभद्रा सेठाणी अपनी सखी से ऐसे पूछी जो यह भेरी का शब्द आज किस कारण से भया तब सखी ने कही, आज बन के मध्य महामुनी पधारे हैं और उन की बंदना को अनेक वादित्रों के नाद कर महोत्सव सहित राजा बृषभांक जाय हैं, यह वचन सुन कर वह सेठाणी यशोभद्रा धर्म की सिद्धि के अर्थ और मनोवांछित फल की प्राप्ति के अर्थ पूजन की सामग्री लेय मुनि के समीप गई, तहां संघ सहित विराजमान वर्द्धमान मुनिराज को नमस्कार कर, पूजन कर यशोभद्रा सेठाणी मुनि राज के समीप बैठी, कैसे हैं मुनीराज ? इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्रादिकों कर वंदनीक पूजनीक हैं, मुनिराज के मुख की बानी स्वर्ग मुक्ति का कारण, इंद्र नरेंद्र नागेंद्रादिको की संपदा की दायक और समस्त कल्याणों का कारण जिनेंद्र भगवान कर भाषित, दया मई, मुनिश्रावक के भेद से दो प्रकार धर्म श्रवण कर सेठाणी यशोभद्रा हाथ जोड़ सिर नवाय नमस्कार कर मुनिराज को ऐसे पूछती भई, हे भगवन्,

वह देव तप संयम से उपार्जनाकरी जो समस्त दिव्य सुखों की खानि ऐसी परम विमान संपदा को अंगीकार करते भये, यह देव सदा काल धर्म विषे तत्पर एक सौ सत्तर क्षेत्रों विषे, जाय कर धर्म के अर्थ तीर्थंकरों के पंचकल्याणक विषे समीचीन पूजा करे हैं, और अवशेष केवलियों की भक्ति कर ज्ञान और निर्वाण कल्याणक विषे पूजन करे हैं, तथा गणधर आचार्य उपाध्याय परमसाधु आदि समस्त मुनिराजों की पुण्य की उपजावन हारी पूजा करे हैं इत्यादिक अनेक शुभ आचरण कर पुण्य का उपार्जन करते वह देव पुण्य के प्रभाव से हजारों देवांगना कर सहित नाना प्रकार के भोगों को भोगते हैं, और देव लोक विषे रात दिन का विभाग नहीं है, और दुखदाई ऋतु नहीं हैं, सुखदाई सास्वता सुखमा सुखमा काल प्रवर्ते है, देव लोक विषे दीन, दरिद्री, निर्धन, रोगी, दुर्भागी, दुखी और जिस का बचन किसी को भी नहीं सुहावे ऐसा दुःखारी उन्मत्त कहिये मदोन्मत्त और विकलांग इत्यादि और भी अशुभ सामग्री स्वप्न विषे भी कदाकाल नहीं दीखे है, सो वह देव कैसे हैं, देवलोक विषे सर्व ही देव दिव्य लक्ष्मी मनोहर कांति अनुपम दिव्यधैर्य कर शोभायमान समस्त दुःखों कर रहित सुख रूप अमृत के समुद्र के मध्य प्राप्त भये हैं और वह पद्मनाभादि समस्त देव कैसे हैं, समस्त दुःखों कर रहित हैं और नेत्र नहीं टिमकारे हैं, महा प्रवीण सास्वत जिनेंद्र देव की पूजा विषे तत्पर हैं, सात धातु, सात उपधातु, मलमूत्र, पसेव, खेद कर रहित दिव्य देह के धारी हैं, और तीन

हस्त प्रमाण ऊंचा है सुन्दर शरीर जिन का और बाईस सागर की है आयु जिन की और बाईस
हजार वर्ष व्यतीत भये मानसिक अहार का सेवन करे हैं ग्यारह मास गये एक श्वास लेवे हैं और
अनेक गुणों के भाजन अवधि ज्ञान के योग कर छटे नरक को पृथिवी पर्यंत शुभाशुभ रूपी द्रव्यों
को जाने हैं, और वह शुभ परिणामों के धारक देव षष्टम नरक पर्यंत विक्रिया ऋद्धि के बल से गम-
नादि करने को समर्थ हैं, देवांगनाओं के दिव्य रूप सुन्दरता मनोहर शृंगार सहित नाना प्रकार नृत्य
देखते और अपसराओं के मुख से मनोहर गान सुनते और रत्न मई यह महल, भद्रशालादि, वन
मे , कुलाचल आदि पर्वत और असंख्यात द्वीप समुद्रों विषे देवों कर सहित क्रीड़ा करते इच्छा
पूर्वक हर्ष सहित गमन करते पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के फल से पूर्वोक्त नाना प्रकार भोगों को भोगते
सुख सागर के मध्य प्राप्य भये, गये काल को नहीं जानते संते उस अच्युत स्वर्ग विषे बाईस सागर
पर्यंत वह पद्मनाभादि देव सुख से तिष्ठते भये, इस भांत वह पद्मनाभादि देव पुण्य के उदय से
परम सुख की करण हारी देव लोक की विभूति को पाय कर तिस अच्युत स्वर्ग विषे सागरों पर्यंत
उपमा रहित भोग सुखों को भोगे हैं, ऐसे जान कर भो ज्ञानी जन हो, सुख की प्राप्ति के अर्थ सकल
शक्ति कर एक भगवान् भाषित जैन धर्म का सेवन करो, ऐसा उपदेश है धर्म है सो समस्त मनोर-
थादिक का उपजावन हारा है, और धर्मात्मा पुरुष धर्म को ही आश्रय करे हैं, और इस धर्म कर ही

यहां सत् पुरुषों के तीर्थंकरादि कल्याण रूप पदवी होवे है, इस धर्म के अर्थ निरंतर मेरा नमस्कार हो, और जैन धर्म के सिवाय और कोई तीन जगत विषे सुखकारी वस्तु नहीं है, और इस धर्म का बीज सम्यग्दर्शन है, और धर्म विषे निरंतर परिणामों को धारण करता ऐसा जो मैं सकलकीर्ति मुनि तिस के, हे धीमन्! चारघातिया कर्मों का घात कर ॥ ऐसी सप्त विभक्तों कर संबोधन सहित धर्म की महिमा वर्णन कर धर्म से अर्हंत पद की प्रार्थना करी, ऐसा यहां भावार्थ है ॥

इत्याचार्य सकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ तिसकी देश भाषा मय वचन का विषे नागश्री नागशर्म आदि का दीक्षा ग्रहण और स्वर्ग गमन का है वर्णन जिस में ऐसा षष्टम सर्ग समाप्त भया ॥



सप्तम अध्याय

(सुकुमाल का जन्म)

चौपाई—सकल तीरथसिद्ध महेश। गणनायक पाठक परमेश ॥
सब साधुन के प्रणमों पाय। जैनधर्म निहचे उरलाय ॥१॥

अथानंतर—सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक् चारित्र की परम विशुद्धता को प्राप्त भये और निरअतिचार चारित्र कर परम शोभायमान ऐसे वह दोनों सूर्यमित्र अग्निभूत महामुनि मोक्ष मार्ग को प्रवर्तावत अनेक देशों विषे यथेच्छ विहार करते एक दिन वाणारसी नगरी के बाहिर बन विषे आये, तहां वह दोनों मुनि आत्म ध्यान विषे अत्यंत निश्चल चित्त को स्थापन कर चार घातिया के घातने निमित्त अद्भुत योग धारते भये, मुक्ति रूप महल की सीढ़ी समान क्षपकश्रेणी पर आरूढ होय प्रथम शुक्ल ध्यान रूप खड्ग कर आदि विषे मोह रूप वैरी का घात किया, उस पीछे वह मुनि जयं भूमि को पाय कर शेष घातिया जिस ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय रूप वैरियों का द्वितीय

नायका जो पुत्र के मुख रूप चंद्रमा का अवलोकन कर सदा प्रसन्न रहे हैं, ऐसे वह सेठाणी विषाद करे, एक दिन तीन ज्ञान आदि अनेक गुण रत्नों के सागर, जगत के हितकारी, मुनि श्रावक देवन कर वंदित, कल्याण रूप संघ कर सहित, ऐसे वर्द्धमान नामा मुनिराज धर्मात्मा जीवों के पुण्य कर प्रेरे भव्य जीवों के संबोधने को उज्जयनी के बन में आये, उन के आगमन को जान कर राजा वृषभांक आनंद घोषणा दिवाय चतुरंग सेना कर वेष्टित मुनिराज के बन्दने को निकला, राजा की भेरी का शब्द सुन कर यशोभद्रा सेठाणी अपनी सखी से ऐसे पूछी जो यह भेरी का शब्द आज किस कारण से भया तब सखी ने कही, आज बन के मध्य महामुनी पधारे हैं और उन की बंदना को अनेक वादित्रों के नाद कर महोत्सव सहित राजा बृषभांक जाय हैं, यह वचन सुन कर वह सेठाणी यशोभद्रा धर्म की सिद्धि के अर्थ और मनोवांछित फल की प्राप्ति के अर्थ पूजन की सामग्री लेय मुनि के समीप गई, तहां संघ सहित विराजमान वर्द्धमान मुनिराज को नमस्कार कर, पूजन कर यशोभद्रा सेठाणी मुनि राज के समीप बैठी, कैसे हैं मुनीराज ? इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्रादिकों कर बंदनीक पूजनीक हैं, मुनिराज के मुख की बानी स्वर्ग मुक्ति का कारण, इंद्र नरेंद्र नागेंद्रादिको की संपदा की दायक और समस्त कल्याणों का कारण जिनेंद्र भगवान कर भाषित, दया मई, मुनिश्रावक के भेद से दो प्रकार धर्म श्रवण कर सेठाणी यशोभद्रा हाथ जोड़ सिर नवाय नमस्कार कर मुनिराज को ऐसे पूछती भई, हे भगवन्,

मेरे पुत्र होयगा कि नहीं सो आप कृपा कर कहो, तब मुनिराज इस भांत कहते भये, हे भद्रे, महाधीर, वीर, दिव्य, रूपवान, गुणों का सागर महान पुण्य के फल का भोक्ता, समस्त जगत में मान्य, सकल कार्य के करने विषे महान् सामर्थ्यवान् ऐसा पुत्र तेरे होगा, परन्तु तरा पति सुरेंद्रदत्त संसार के सुखों विषे अत्यंत उदास है और तपोबन प्रति जाने की वांछा करे है, सोई पुत्र के अभाव से नहीं जाय है, सो धर्मात्मा सुबुद्धि जबलग अपने पुत्र का मुख नहीं देखेगा तब लग धन संपदा के मोहसे घर में तिष्टेगा, पीछे पुत्र का मुख देख कर उत्तम गुणों का आकर सेठ सुरेंद्रदत्त सकल संपदा का और तुम्हारा त्याग कर निर्दोष तप ग्रहण करेगा, और तेरा पुत्र भी अति धर्मात्मा धर्म का सेवन हारा जब लग दिगंबर मुनि के बचनादिक प्रगट नहीं सुनेगा तब लग अपने घर में रहेगा, और मुनि के दर्शन मात्र कर अथवा मुनि के प्रत्यक्ष बचन के सुनवे कर सो तेरा पुत्र धीर बीरों के गोचर दुर्द्धर तप अवश्य ग्रहण करेगा, इस भांत वर्द्धमान मुनिराज के बचन सुन कर वह सेठानी यशोभद्रा आपके इष्ट अनिष्टादि के संयोगसे मन विषे हर्ष और विषाद सहित भई ॥ भावार्थ-पुत्र होयगा यह तो हर्ष भया और पुत्र का मुख देखते ही सेठ दीक्षा ग्रहण करेगा यह विषाद भया ॥

सुकुमाल का जन्म ।

अथानन्तर-तब कितनेक दिनोंकर पुण्य के उदय से सेठानीके गर्भाधान भया, वह नागश्री

का जीव पद्मगुल्म नामा देव आयु पूर्ण कर इस सेठानी यशोभद्रा के गर्भ में आया तब यह यशोभद्रा सेठाणी अपने मन में ऐसे विचार करती भई कि जो सेठ मेरे गर्भाधान जानेगा तो अवश्य तप ग्रहण करेगा, ऐसे जान कर सेठके तप ग्रहण के भय कर वह सेठानी यशोभद्रा सेठ आदि समस्त स्वजनों से अतिप्रछंन्न वृत्ती कर एकान्त गृह में तिष्ठती अपने गर्भ को वढाया, भावार्थ–किसी को भी गर्भ नहीं जनाया, अनुक्रम से नव मास पूर्ण भये पीछे सेठानी रमणीक भूमि ग्रह विषे प्रवेस कर देदीप्यमान कांती का पुंज ऐसा पुत्र जनती भई, तब प्रसूत के वस्त्र और तिस बालक के मलकर भरे वस्त्रों को घर से बाहिर सरोवर की पाल पर दासी धोवे थी उसे देख कर एक ब्राह्मण चित विषे ऐसे विचारता भया, अहा यहां यह सुरेंद्रदत्त सेठ ही पुत्र रहित था सो आज इस सेठ के अवश्य पुत्र भया है, ऐसे वस्त्र प्रक्षालन रूप अनुमान ज्ञान कर पुत्र की उत्पति जान सो वह ब्राह्मण हर्ष सहित सेठ के समीप आय कर आश्चर्यकारी वचन ऐसे कहता भया, कैसा है ब्राह्मण। वेणु (वीणा) कर रुक रहाहै दाहिणा कर जिसका भावार्थ–आशीर्वाद देने का दक्षिण हाथ वीणा कर रुका था इससे आशीर्वाद दिये विना ही आनंद से कहता भया, हे श्रेष्ठिन् तेरे अखंड पुण्य के प्रभाव कर आज अवश्य पुत्र जन्मा है, यह बचन ब्राह्मण के सुन सेठ हृदय विषे परम आनंद को प्राप्त भया, ब्राह्मण के वचन से सुरेंद्रदत्त सेठ अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त होय कर, और हर्ष सहित अपने पुत्र का मुख अवलोकन कर

और ब्राह्मण को बहुत संपदा देय,और गृह पुत्रदारादिकों कर सहित सकल संपदा को त्याग कर और संसार देह भोगादि विषे सर्वत्र वैराग्य को पायकर तप के अर्थ बन विषे गया,तहाँ श्रीगुरु के चरणारबिंद को नमस्कार कर सुरेंद्रदत्त सेठ समस्त परिग्रह का त्याग कर मन बचन काय की विशुद्धता कर हर्ष सहित मुक्तिके अर्थ दीक्षा ग्रहण करता भया, उस पीछे सुख बुद्धि सुरेंद्रदत्त मुनि अपनी शक्ति कों प्रगट कर स्वर्गादि मुक्ति पर्यंत सुखका दायक संयम सहित दुर्द्धर घोर तप करते भये॥

अथानंतर यशोभद्रा सेठानी जिनालय विषे जिनेंद्र देवों का पूजनादि महोत्सव कर और वस्त्रा भरणक दान कर समस्त सुजनोंको संतोषित कर और नाना प्रकार गीत वादित्र नृत्यनादिकों कर सकल कुटुंब सहित पुत्रके जन्मका बड़ा उत्सव करती भई उस पीछे अन्य दिन विषे बालककी माता यशोभद्रा अपने स्वजनोंकर सहित अत्यन्त कोमल शरीरका अवयवपणासे बालक का सुकुमाल ऐसा नाम प्रगटकिया,अपने पुत्रका सुकुमाल ऐसा नाम प्रसिद्ध कर पुण्य की प्राप्ति के अर्थ जिनेंद्र भगवान के मंदिर विषे और अपने घर के चैत्यालय विषे बडी विभूतिकर पूजनादि महोत्सव करावतीभई बाल चंद्र समान अत्यंत सुन्दर सो बालक समस्त परिजन के नैनों के परमानंद कारी स्फुरायमान कांति और मनोहर आलापन कर और शुभ अंगोपांग अवयवों सहित मधुर गुणोंकर और अपनी अवस्था के योग्य मधुर पयपानादिकोंकर अनुक्रमसे सारभूत वस्त्राभरण कर जगतमें अत्यंत प्यारा ऐसा सुकुमाल

लावण्यता की खान ऐसे जोडे बत्तीस स्त्रियों कर सहित महान पुण्य के उदय से निरतर इंद्र समान भोग भोगता ऐसा सुकुमाल कुमार चिंता रहित निश्चिन्त सुख सागर के मध्य तिष्ठता गये काल कों नहीं जाने है, एक दिन कोई एक व्योपारी देशान्तर से आय राजा वृषभांक को एक अमोलक रत्न कंबल दिखाया, सो राजा वृषभांक उस रत्नकंबल को देख बहुत मोल का जान बहुत द्रव्य देने की शक्ति के अभाव से उस ही समय व्योपारी को वापिस देदिया ॥

भावार्थ–रत्नकंबल के मोल योग्य राजा के घर में द्रव्य नहीं था तब वह व्योपारी नृप से रत्नकंबल को ले शीघ्र ही जाय कर यशोभद्रा सेठानी को दिखाया, और द्रव्य लेने के अर्थ मोल कहा सेठानी रत्नकंबल को अपने पुत्र के योग्य जान उस व्योपारी को यथा योग्य बहुत द्रव्य देय शीघ्र ही महल विषे अपने पुत्र के पास भेजा, सुकुमाल कुमार रत्नकंबल को भारा और कठिन देख कही यह तो मेरे योग्य नहीं, ऐसे कह कर हाथ से डार दिया, तब यशोभद्रा रत्नकंबल के खंड खंड कर सुकुमाल की बत्तीस वनिताओं की सुंदर पगरखीयां (जूतीयें) कराय दई, एक दिन सुकुमाल की स्त्री सुदामा, पावों से पगरखी खोल अपने महल के शिखर पर बैठी कितनेक काल दिशा अवलोकन करती पश्चिम द्वार के मंडप विषे तिष्ठे थी, उस ही समय ग्रध्र पक्षी महल में प्रवेश कर मांस के भास से एक पगरखी को चोंच से उठाय फिर आकाश से उड़कर वृषभांक राजा

के महल के शिखर पर खाने के अर्थ बैठा अति कोप से अपनी चोंच कर पगरखी को घात करता संता खाने को असमर्थ होय कर राज मंदिर विषे गेरता भया, तब राजा वृषभांक रत्नकंवल की पगरखी देख अचरजवान हुआ संता कहता भया कि यह रमणीक पगरखी कौन की है, ऐसे किसी निकटवर्ती पुरुष से पूछी, राजा के बचन सुन कर निकटवर्ती पुरुष कही, हे राजन्! यह रमणीक पगरखी सुकुमाल की कांता (स्त्री) की है, कैसा है सुकुमाल? महान लक्ष्मीवान, महान सुख संपदा कर इंद्र समान शोभायमान है, ऐसे निकटवर्ती पुरुषों के बचन श्रवणमात्र से कौतुक कर पाया है कौतुक जाने ऐसा नृप वृषभांक सुरेंद्रदत्त सेठ का पुत्र महा लक्ष्मीवान ऐसे सुकुमाल के देखने को शीघ्र ही चला। तब यशोभद्रा सेठानी सुकुमाल की माता, नृप को आवता जान कर नृप के सन्मुख जाय बड़ी विभूति कर अपने घर के मध्य नृप को प्रवेश करावती भई, वहां नृप को रत्न जड़ित स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाय बहुत भेट नृप के आगे धर सुकुमाल की माता यशोभद्रा सेठानी नृप को ऐसे पूछती भई, हे देव! आप अपने आगमन कर आज मेरा घर पवित्र किया, परन्तु अबार तुम्हारे आगमन विषे कारण कहा है, सो कृपा कर कहो। तब वृषभांक नृप से ऐसे कही, हे भद्रे! मैं केवल तेरे पुत्र के देखने के अर्थ आया हूं, और कुछ भी कारण नहीं, तब वह यशोभद्रा सेठानी महल के मध्य खण विषे नृप को बठाय हर्ष सहित अपने पुत्र को लाय दिखावती भई, राजा वृषभांक सुकुमाल के विस्मय

कारी रूप को अतिशय कर देख कर प्रसन्न होय अत्यंत सन्मान कर सुकमाल को आधे सिंहासन पर बैठाय लिया, तब यशोभद्रा सेठानी महीपति से ऐसी प्रार्थना करती भई, हे देव! आज हमारे घर भोजन कर अपने महलों में पधारना योग्य है, अन्यथा कहिये भोजन किये विना आप का पधारना योग्य नहीं है, ऐसी सेठानी की प्रार्थना पर राजा वृषभांक सुकुमाल सहित वहां स्वर्ण के थाल में परम मनोह भोजन किया, भोजन किये पीछे नृप सेठानी को ऐसे कहता भया, 'हे कल्याणरूपणी ! इस सुकुमाल के निधनीक तीन व्याधी कैसी हैं, तिन के मिटने के उपाय विषे तू क्यों मंद है? तव सेठानीने कहो इस के व्याधि कौनसी हैं, तब नृप कहता भया, एक तो आसन की दृढता नहीं चलायमानपना है, दूजे प्रकाश विषे नेत्र से जल स्रवे है, तीजे भोजन विषे एक एक चांवल खाय है, यह वचन सुन कर सेठानी सुकुमाल की माता यशोभद्रा ने कही। हे राजन ! जो आपने तीन व्याधि कही सो व्याधि इस सुकुमाल के कदे भी नहीं हैं, यह सुकुमाल अत्यंत कोमल दिव्य शय्या विषे शयन करे है, और अत्यन्त कोमल गद्दी तथा गालीचों पर सदा काल सुख से बैठे है, और आज आप की साथ सिंहासन पर बैठा, और हमने मंगल के अर्थ इस सुकुमाल के मस्तक पर बहुत सिरसों क्षेपी, वह सिरसों के कण यहां अबार इस के सुखासन विषे पड़े हैं, सो तिस सिरसों का कर्कशपना कर यह सुकुमाल चलायमान भया, और इस पुण्यात्मा ने देदीप्यमान मणिमई मंदिरोंके मध्य एक रत्न की

प्रभा के सिवाय और प्रभा कभी भी नहीं देखी है, और आज हमने आप की दीपक कर आरती उतारी सो आरती के प्रताप रूप प्रभा के देखने से इस अत्यंत सुखिया के दुःख की उत्पत्ति का कारण नेत्रों से शीघ्र ही जल स्रवता भया, और दिन के अस्त विषे सरोवर विषे मुकुलित कमल की कर्णिका में धोये हुये भीजे मनोग्य तंडुल धर देवें हैं फिर प्रभात समय तिन तंडुलों का मनोहर अति कोमल सुगंधायमान भात, यह कुमार केवल भोजन करे है, सो उन तंडुलों के अल्प भात कर भोजन विषे दोनों के तृप्त पना नहीं जान कर आज हमने तिन तंडुलों के मध्य सुंदर और तंडुल क्षेपे हैं, सो सुंदर मिले हुये तंडुलों का भी भोजन इस कुमार ने आज अरुचि से किया है, इस सुकुमाल की वार्ता के श्रवण मात्र से राजा वृषभांक हृदय विषे, अत्यंत अचरजवान भया, और सेठानीने जो रत्न आभरण मनोग्य वस्त्र भेट किये तिस कर के सुकुमाल की प्रतिष्ठा कर और समीचीन श्लाघा योग्य वचनों से प्रशंसा कर और यह अवंती सुकुमाल है ऐसा और दूजा नाम सत्पुरुषों के मध्य प्रसिद्ध कर राजा वृषभांक अत्यंत आनंद सहित अपने राजमंदिर को गया ॥

अथानन्तर-तीन जगत विषे विख्यात है कीर्ति जिस की ऐसा अवंती सुकुमाल पुण्य के उदय से परम मनोहर भोग भोगता तिस सर्वतोभद्र महल ही विषे सुख से तिष्ठता भया, इस भांत पुण्य के उदय से यहां अनुपम परम संपदा को पाय कर सुरेंद्रदत्त, सेठ का पुत्र यह अवंती सुकु-

माल दुःख रहित अनुपम सारभूत महान् सुखों को और मनोहर दिव्य भोगोपभोगों को भोगे है, कैसा है अवंती सुकुमाल ? बड़े बड़े राजादिकों करके पूजनीक प्रशंसा योग्य है, ऐसे जान कर विभव सुख के अर्थ निपुण ज्ञानी जन हो, तुम यहां अपनी शक्ति प्रमाण मन बचन काय की शुद्धता कर बड़े यत्न से निरंतर सर्वज्ञ भाषित परम धर्म का सेवन करो, जिन धर्म को सेवन कर ज्ञानी पुरुष तीन जगत विषे सारभूत सुखों को पाय कर तीर्थंकरादिकों के परम कल्याण को पावें हैं, और क्रम से अनुपम अविनाशी सुखों की खान ऐसा जो निर्वाण पद उसको पावे हैं ॥

इत्याचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ उस की देश भाषामय वचनिका विषे सुकुमाल की उत्पत्ति और सुखानुभव का है वर्णन जिस में ऐसा सप्तम सर्ग समाप्त भया ॥



अथ आठवां अध्याय

(सुकुमाल का तप कर के सर्वार्थसिद्धि में गमन करना)

चौपाई--तीन जगतपति पूज्य अनूप। श्रीमत तीन जगत गुरु भूप ॥
तीन भुवनपति सेवत पाय। प्रणमं परम हृष्ट शिर नाय ॥

अथानंतर-एक दिन इस सुकुमाल का मामा धर्मात्मा जगत का हितकारी अवधि ज्ञानी यशोभद्र नामा महामुनि अपने अवधि ज्ञान कर पुण्यवान् सुकुमाल की अत्यंत अल्प आयु जान पूर्व भव से आया जो संबंध उस के स्नेह कर के ऐसे चिंतन करते भये, अहो इस सुकुमाल की अति दुर्लभ सपूर्ण आयु तो धर्म के सेवन से रहित ऐसे ही गई, और तप धर्म का कारण किंचित अति अल्प आयु अवशेष रही है, और अब उसके घर विषे सकल संयमी का गमन भी नहीं पाइये है इसलिये और कोई सांचा उपायकर उस सुकुमाल को संयम दीक्षा दूंगा, इस भांत विचार कर यशोभद्र नामा मुनि उस सुकुमाल के संबोधन के निमित्त चतुर्मास संबंधी भले योग के ग्रहण के शुभ दिन विषे

सुकुमाल के निकट उपवन के मध्य शोभायमान उत्तंगत्रिजगद्वंद्य ऐसा चैत्यालय विषे आये, उस ही समय बनपाल जाय कर सुकुमाल की माता से ऐसे कही, हे मात ! उपवन के चैत्यालय विषे योगी राज आये हैं, यह बचन माली के सुन कर उस जिनालय विषे शीघ्र ही जाय वहां पुण्य रूप अर्हंत देव के प्रतिबिम्बों का और अपना भाई यशोभद्र मुनिराज का पूजन कर, प्रणाम कर वह यशोभद्रा सेठानी ऐसे कहती भई, हे नाथ, यहां मेरे प्राण समान एक ही पुत्र है सो तुम्हारे बचन श्रवणमात्र कर के ही तुरत संयम ग्रहण करेगा, तब मरण का कारण आर्तध्यान मेरे अवश्य होयगा, ऐसे जान हे दया निधान ! मुझ पर दयाकर यहां से और स्थान प्रति शीघ्र ही जावो, तब मुनिराज ने ऐसे कही, हे भद्रे ! आज योग का दिन वर्ते है, इस लिये हमें कोई भी स्थानक गमन करने योग्य नहीं, कैसे हैं हम ? जीवों की दया ही है अर्थ कहिये प्रयोजन जिन के उस से चतुर्मास के योग कर यहां ही तिष्ठूं हू इसमें और तरह नहीं, ऐसे कह कर शीघ्रही अंतरंग वहिरंग उपाधि सहित देह का ममत्व का त्याग कर सर्वत्र हा समतारूप हैं भाव जिनके ऐसे यशोभद्र मुनिराज सूकेठूठ समान अडिग होय ध्यान का अवलंबनकर कायोत्सर्गकर सहित खडे तिष्ठे उस जिन मंदिर विषेहीश्रमं ध्यानकर आत्मतत्वके विचार से कायोत्सर्ग सहित चार महीने व्यतीत करे, सो धीर बुद्धि यशोभद्र मुनिकार्तिक शुदि १५के दिन रात्री के चौथे पहर चतुर्मासकीक्रियाकर योगका त्याग किया, उस समय अवधि ज्ञानरूप नेत्रकर सुकुमालको

निद्रा रहित जान उसके संबोधन के अर्थ वह यशोभद्रमुनिराज ने अमृत समान मधुरवाणी कर समस्त त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति का वर्णन करने का प्रारम्भ किया, उस पीछे प्रथम ही वैराग्य के निमित्त अधोलोक का वर्णन कर उस पीछे मध्य लोक का कथन कर अनंतर स्वर्गों का वर्णन कर फिर अच्युत स्वर्ग विषे पद्मगुल्म विमान में पद्मनाभ देव की बड़ी विभूति संपदाका मधुरवाणी करके वर्णन करने को वह यशोभद्र मुनिराज उद्यमी भये, तब उस पद्मनाभ देव की विभूति संपदा के श्रवण मात्र से वह अवन्ती सुकुमाल जाति स्मरण को प्राप्त भया, सो उस जाति स्मरण से अपने समस्त पूर्व भव जान कर और संसार शरीर भोग सुखों विषे परम वैराग्य को पाय कर अत्यंत विरक्त भया, सुकुमाल इस भांत चितवन करता भया, अहो जो मेरा जीव अनुपम परम रमणीक स्वर्ग संबंधी भोग सुख सागरों पर्यंत चिरकाल भोगें । तिन कर के भी तृप्ति को नहीं प्राप्त भया, सो, अब मेरा जीव दुःख से मिले जो निन्दनीक पराधीन और शरीरके पीड़ाके उपजावन हारे ऐसे मनुष्य पर्यायके भोग सुख, तिन कर कहां तृप्तिको प्राप्त होयहै ? भावार्थ–तृप्तिको नहीं प्राप्त होय है, कदा काल दैवयोग से इन्धन कर अग्नि तृप्त को प्राप्त होय, अथवा नदी के प्रवाह कर समुद्र तृप्ति होय, और धन संग्रह कर लोभ शांति होय तो होय, परन्तु यह आत्मा, अनन्त जन्म कर भोगे जो त्रैलोक्य संबधी नाना प्रकार के मनोहर विषय सुख, तिन कर किसी काल विषे भी तृप्ति नही भये, इस से जे अत्यंत कामी पुरुष सुखों कर तृप्ति

तपश्चरण के अर्थ उद्यमी ऐसा बुद्धिमान् सुकुमाल महल से निकलने का उपाय देखता हुआ एक वस्त्रों का वींटा (गठडी) देखता भया उस में से वस्त्रों को खैंच परस्पर एक एक वस्त्र को रज्जू (रस्सी) समान दृढ़ बांध महल के थंभ से दृढ़ बंधन कर, फिर तिस वस्त्र को लुबाय भूमि पर्यंत लम्बा क्षेपण कर उसे पकड़ कर पुण्य के उदय से पृथ्वी विषे उतर यशोभद्र मुनिराज के समीप गया, तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड नमस्कार कर आनन्द सहित सुकुमाल कुमार श्री मुनिराज को ऐसे कहता भया, हे भगवन्, इस लोक विषे विषयासक्तिपनेकर के जे दिन गये वह संयम के आचरण बिना वृथा ही गये। अब आपकी कृपा कर आपके वचन रूप अमृत के पान से मोह रूप दुर्विष का वमन कर आज मैं अत्यंत सचेत भया हूं। इस से अब ही दया कर मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ मुझे भगवती दीक्षा देवो, कैसी है दीक्षा ? समस्त सुखों की खान है और मुक्ति की उपजावन हारी है। तब यशोभद्र मुनिराज बोले, हे भद्र, तैंने बहुत भला विचार किया, क्योंकि तेरी आयु सिर्फ तीन दिन प्रमाण बाकी रही है, तब सुबुद्धि सुकुमाल ने बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रह का और चार प्रकार आहार का मन वचन काय की शुद्धता से त्याग कर यशोभद्र गुरु के बचन से शीघ्र ही जिनमुद्रा ग्रहण करी। प्रायोग गमन संन्यास सहित ध्यान की सिद्धि के अर्थ धर्म ध्यान का अवलंबन कर वन के मध्य गमन करता भया, वहां भयानक निर्जन प्रदेश विषे जाय देह से ममत्व का त्याग कर पृथ्वी विषे एक पार्श्व से शरीर को

निश्चल स्थापन कर धर्म ध्यान से समाधि मरण के अर्थ महा प्रवीण सुकुमाल मुनिराज प्रायोग गमन नामा संन्यास को अंगीकार करता भया। भावार्थः—संन्यास के तीन भेद हैं, भक्ति प्रत्याख्यान, इङ्गिरी, प्रायोग गमन, तहां चतुर्विध आहार का त्याग तो तीनों ही विषे होय है, और भक्ति प्रत्याख्यान संन्यास विषे स्वपर कृत देह का उपचार है अर्थात् आप और दूसरे दोनों टहल कर सक्ते हैं और इंगिरी विषे स्वकृत ही उपचार है (अपनी टहल आप ही करसक्ता है दूसरा नहीं) परकृत नहींहै, और प्रायोग गमन विषे स्वपर कृत दोनों ही उपचार नहीं है अपने शरीर की टहल न आप कर सकता है न दूसरा, जैसा का तैसा रहे। सो सुकुमाल मुनि ने प्रायोग गमन संन्यास अंगीकार किया। और यशोभद्र मुनिराज भी तिस जिन मंदिर से निकस कर संक्लेश परिणामों में आकुलता की हानि के अर्थ कोई और जिन मंदिर विषे जाय तिष्ठे। कैसे हैं यशोभद्र मुनि? अत्यंत विशुद्ध है बुद्धि जिनकी। अब यह तो कथन यहां ही रहा, अब आगे और कथन सुनो, वह सुकुमाल की बत्तीस स्त्रियां सुकुमाल को नहीं देख कर शोककर आकुलभई हुई शीघ्र ही यशोभद्रा के निकट आय बत्तीस सुन्दरी गद्गद बाणाकर ऐसे कहती भई—हे मात हम बत्तीस वनिताओं को प्राण वल्लभ तेरा पुत्र आज नहीं दीखे है, सो नहीं जानिये हैं वह धर्मात्मा कहां गया इस भांत उन सुकुमाल की स्त्रियों के वचन सुन कर बड़े शोक का भार कर शीघ्र ही यशोभद्रा मूर्छा को प्राप्त भई,

सो मानो निश्चल जिनवानी ही है, और उसी समय सकल स्वजन परजन हाहाकार शब्द करते भये, और शोक कर पीडित सुकुमाल की समस्त वनिता बडा रुदन करती भई, उस पीछे अपने अपने बंधुजनों कर शीतोपचारादिकों से सहज सहज कहिये मंद मंद धीरे धीरे चेतना को पाय कर यशोभद्रा सुकुमाल के हेरने (ढूंढने) को उद्यमी भई, परिवार सहित शोक कर पीडित वह यशोभद्रा यहां वहां अपने पुत्रको देखती हुई जिस वस्त्र माला से सुकुमाल महल से उतरा था उस वस्त्र को देखती भई। तब सुकुमाल की माता यशोभद्रा उस वस्त्र मालाकर के चित्त विषे अपने पुत्र का गमन जान शीघ्रही श्रीजिनेंद्र के मंदिर गई, वहां उस यशोभद्र मुनिराज को भी नहीं देख करके उसही समय प्रकट यह निश्चय किया जो इस वस्त्रमाला का उपाय कर और यहां चतुर्मास के याग धारण के उपाय कर निश्चय से मे पुत्र को यशोभद्र मुनि ही लेगया है, उस पीछे परमशोक कर व्याकुल ऐसी वह यशोभद्रा समस्त बंधुजनों के सहित बडे आग्रह से भूतल विषे अतिशय पने कर सुकुमाल को हेरने लगी, और वृषभांक नृप आदि समस्त राजलोक और समस्त पुरीवासी लोक सुकुमाल के हेरने को प्रवृत्त हुए २ अपने घर से बन विषे गये, यह राजादिक वा यशोभद्रादिक वडे यत्न से वन विषे निरंतर सुकुमाल को हेरते हुए जिस गूढ़ प्रदेश विषे सुकुमाल मुनि प्रायोग गमन संन्यास धार तिष्ठे था, उस उज्जयिनी पुरी विषे सुकुमाल का शोकादि करके समस्त पुरवासी

लोगों ने भोजन नहीं किया, और पशुओं ने घास नहीं खाया और पक्षियों ने चंगा नहीं चुगा, उस समय सुकुमालकी माताके और बंधुजनोंके और सुकुमाल की बत्तीसों वनिताओं के जो दुःसह आतापकारी तीव्रशोक भया उसके वर्णन करने को कौन समर्थ है? भावार्थः—कोई भी समर्थ नहीं ॥

अथानंतर—आगे वह सुकुमाल मुनि भी निश्चल निर्मल परिणामों सहित महा प्रवीण निज और परकृत उपचार की बांछा रहित अशुभ कर्म के क्षयको उद्यमी सम्यग्दर्शन सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तप इनचार आराधनाओंविषे तल्लीन शुद्ध भावना विषे लगायाहैचित्तजाने स्नेह रहित निद्रा रहित धर्मबुद्धि धर्म ध्यानका जब लग चिंतवन करे था तब लग वह पूर्व भवकी भौजाई अग्नि भूत ब्राह्मण की स्त्री सोमदत्ता जिस के मुख पर सुकुमाल के जीव ने वायुभूत के भव में लात मारीथी(दईथी)उसने असमर्थपने करके इसका पाद भखनेका निदान कियाथा,सोसोमदत्ता संसार रूप वन विषे त्रिस्थावर की अनेक योनि में चिरकाल भ्रमण कर भयरूप है आत्मा जिसका, पराधीन सर्व ऋतु के दुःख कर पीडित पाप कर्मके उदय कर उसही वन विषे स्यालनी(गीदड़ी)भई,सो वन विषे आगमनके अवसर सुकुमालके कोमल पावोंसे भूतल विषे रुधिरकी धारा पडती गई थी उसे आस्वादन करती चाटती थकी आय कर निश्चल ध्यानारूढ सुकुमाल मुनि को देखती भई। तब पूर्व वैर संबंधी कोप कर निदान वैर के देखते महा क्रोधायमान होयकर वह स्यालनी स्वयमेव सुकुमाल के दाहिने

पैरको खाने लगीं और उस स्यालनी की पिल्ली, बच्चा क्षुधातुर उस स्यालनी के साथ ही सुकुमाल मुनि का बांया पांवखाने को मुख से उसही समय प्रारम्भ किया ॥

अथ श्री सुकुमाल मुनि बारह भावना भावे हैं।

अथानंतर–उन श्रीसुकुमाल मुनिके उन दोनों स्यालनियोंकेअतिस्तोक स्तोक भक्षण करने से अत्यंत कोमल अंग विषे वडी वेदना भई। उस समय इस वेदना के जीतने के अर्थ और परम वैराग्य की वृद्धि के अर्थ, उन धीर बीर श्रीसुकुमाल मुनिने अपने हृदय विषे बारहभावना के चिन्तन का प्रारंभ किया। तिन के नाम सुनो, प्रथम अनित्य भावना, दूजी अशरण भावना, तीजी संसार भावना, चौथी एकत्व भावना, पंचमी अन्यत्व भावना, छठी अशुचि भावना, सातमी आश्रव भावना, आठवीं संवर भावना, नवमी निर्जरा भावना, उस पीछे दशमी लोक भावना, ग्यारमी बोध दुर्लभ भावना, और बारवीं धर्म भावना, यह बारह भावना संवेग की उपजावन हारी उपसर्ग के विजय के अर्थ चिन्तवन करते भये ॥

१ अथानंतर–श्रीसुकुमाल महामुनि गिदडी करके पैर भक्षण करनेकी परीषह सहते हुए। तहां प्रथमही अनित्य भावनाका चितवन इस प्रकार करे हैंकि यह देह काल रूप वैरी से क्षण मात्र मेंविध्वंसित

हो जायगी और यह यौवन बिजली समान क्षण भंगुर है,और समस्त भोग संपदा वादल समान क्षण स्थाई हैं,जैसे इस संसार विषे भ्रमण करते पूर्वतन मेरे अनंतानंत शरीर विलाय गये,तैसे यहां यह भी शरीर कर्मरूप वैरीकी हानिके अर्थ जाओ,इस देह के जाने में मेरा कुछ भी विगाड़ नहीं,मेरुसमानप्रचुर पाप कर्मके वसभया मैं नर्क विषे उपजा,वहां नारकियोंने अनंतानंत तिल तिल प्रमाण मेरी देहकेखण्ड खण्ड किये। और तिर्यंच गति विषे भ्रमते मेरे अनंत शरीरोंको निर्दई सिंह व्याघ्रादि क्रूर जीवोंने अनंत बारभक्षण किया,अब यह मेरा शरीर यहां कर्मों के नाश के अर्थ जाए है,तो इस उपसर्गके विजय होते हुए मुझे परम लाभहै॥यहां ग्रंथ रचिता आचार्य कहेहैंकि संसार रूप वैरी से भयभीत जे ज्ञानी जीव हैं उन करके दुष्करतप किया जाए है,और ज्ञानी जीव उप सर्गके विजय को परमतपकहेहैं,और तीन लोक विषे जीवों के शुभ कर्म से उपजे जो राज्य भोग शरीर दारादिक और संपदा सुख धनादिक वस्तु कुछ एक सुंदर दीखे है, सो सर्व वस्तु गिणता के दिनों में काल रूप अग्नि से खाककी राशि हो जायगी, इस भांत समस्त जगत को विनाशी जान कर, हे ज्ञानी पुरुष हो, सुखकी प्राप्ति के अर्थ उग्रोग्र तप के समुदायकर के अविनाशी परम पदका साधन करो, इति अनित्यभावना ॥

२ श्री सुकुमाल मुनि अशरण भावनाका चिंतवन करें हैं कि जैसे मृगारि(सिंह)करके पकडे गये बन विषे मृगको कोई शरण नहीं तैसेही मनुष्योंको जन्म मरणके दुःखों से वचाने को कोई भी रक्षक नहीं है,

जब इस जीव को यमराज आय कर पकडे हैं तब इंद्रादिक देव और समस्त विद्याधर चक्रवर्त्यादिक मनुष्य क्षण मात्र भी राखने को समर्थ नहीं हैं, संसार रूप बन विषे भ्रमण करते अशरण पने से मैंने छेदन भेदनादिक अत्यंत तीव्र कोटिक दुःख भोगे हैं अब यहां यह पशु स्यालनी मेरे पांवको भक्षण करे है सो अशुभ कर्म की हानि के अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ, और संसार के बिनाश के अर्थ यह बहुत भला काज भया है,और तरह नहीं, जहां कोई भी रक्षक नहीं ऐसे इन तीनों लोकों विषे संसारी जीवों के रक्षक पंचपरम गुरु ही हैं और केवल प्रणीत धर्म रक्षक है, जिस से इस लोक विषे यह पंचपरमेष्ठी मुक्ति के दायक सत्पुरुषोंका उपकार करने को समर्थ हैं इन सिवाय और ब्रह्मा, विष्णु महेशादिक तथा देवी दिहाडी, क्षेत्र पाल, भैरवादिक मंत्र तंत्रादिक कोई भी उपकार करने को समर्थ नहीं, उस से इस से इस दुर्द्धर उपसर्ग विषे अशुभ कर्मके विजयकी सिद्धि के अर्थ और मुक्तिके अर्थ मेरे अर्हंतादि पंच परमेष्ठी तथा जिन धर्म ही शरणाधार होऊ । यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि इस भांत तीन लोक को शरण रहित जान कर हे चतुर विचारज्ञ पुरुष हो, तप संयम कर शाश्वत नर्वाण के शरणे जाओ ॥ इति अशरण भावना ॥

२ संसार भावना का श्री सुकुमाल मुनि इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि यह आदि अंत रहित पाप रूप दुःखोंका समुद्र महा भयानक पंडितों करके निन्दा योग्य ऐसा पंच प्रकार संसार

सत्पुरुषों के स्थिरता के अर्थ कैसे होय? इस अनादि संसार विषे भ्रमण करते नरक तिर्यंच दुर्गति विषे समस्त जीवों करके चिरकाल पर्यंत मैंने अनंती वेदना पाई, इस स्यालनी के भक्षणदिक से उत्पन्न भया, ऐसा यह दुःख मेरे कितनाक है अर्थात् कुछ भी नहीं, यह दुःखतो अशुभ कर्म के नाश से मेरे निःसंदेह मुक्ति के सुख के अर्थ है, इस भांत बारंबार संसार के विचित्रपने का चिंतवन करता ऐसा वह सुकुमाल मुनि मेरुगिर समान अत्यंत निश्चलांग कहियेनिष्कंप भया। यहां ग्रंथ रचिता आचार्य कहे हैं कि तुम सुख के अर्थ ज्ञानी पुरुष हो, अनंत दुखों कर परिपूर्ण संसार के स्वरूप को जान कर इस देह से स्नेह का त्याग कर, दर्शन, ज्ञान चारित्रादिक के आचरण में अनंत सुखों की खान ऐसे मोक्ष का साधन करो, इति संसार भावना ॥

४ श्री सुकुमाल मुनिचौथो एकत्वभावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि जन्म, जरा, मरणादिक के दुखों कर रहित और एकाकी निर्मल अमूर्तिक चिरंजीव ऐसा मैं आत्माराम निश्चय कर अनंत गुणों का भाजन हूं यह दोनों (स्यालनी और स्यालनो की पिल्लो) इस दुर्गंधित कलेवर को भले ही खावो, मेरे अमूर्तिक निजस्वरूप को नहीं खाय हैं। इस भांत विचार वह सुकुमाल मुनि रंच मात्र भी कलुष परिणाम नहीं करे है। यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि हे ज्ञानी पंडित जन हो, जन्म जरामरण रोग शोक दुःखादिकों विषे अपना एकाकीपना देखकर मुक्ति के अर्थ एक चिदानंद

आत्मा ही का चितवन करो ॥ इति एकत्व भावना ॥

५ श्री सुकुमाल मुनि पांचमी अन्यत्व भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं। कि यह घिनावना क्षणभंगुर शरीर मेरे से जुदा है और निश्चय से मन वचन तथा सकल इंद्रियां भी मेरे से जुदी हैं। यह दोनों पशु केवल काय को भखे हैं और काय रहित मेरे आत्माको नहीं भखे हैं। इससे मेरे दुःख कहां से होय? ऐसे वह मुनि हृदय विषे चिंतवन करे हैं। यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि इस भांत शरीरादिक से अपना अन्यपणा जान कर भोअन्यत्व वेदी भव्य जीव हो, इस अशुचि अंग से जुदा कर मुक्तिके अर्थ एक अपने निज स्वरूप का ध्यान करो ॥ इति अन्यत्व भावना ॥

६ श्री सुकुमाल मुनि छठी अशुचि भावना का चिन्तवन इस प्रकार करे हैं। कि क्षुधा तृषा रूप अग्नि का घर और काम क्रोध रोग रूप नागों कर व्याकुल सप्तधातु उपधातु मलादिकोंकरकेपरिपूर्ण ऐसी यह काय ज्ञानी पुरुषोंकर कहा सराहिये है ? अर्थात् जैसे जिस घर में मूत्रादिक भरे और जिस में सांप गोहरे न्यौल क्रीडा करें, और जिस के चारों ओर अग्नि प्रज्वलित भई उस घर की पंडित जन सराहना नहीं करें वैसे इस अशुचि कलेवर की ज्ञानी जन सराहना नहीं करे हैं। अहो यह स्यालनी बंदीगृह समान मेरे अशुभ अंगको भखे है और इस अंग से मुझे मुक्त कहिये रहित करे है सो यह ही मेरे शिवदायक परम लाभ है, इत्यादिक भेद विज्ञान के चिंतवन कर, अति धीर वीर वह सुकुमाल मुनि

स्यालनीकर के पावों को खाते संतेभी मन वचनकायकी शुद्धताकर रंच मात्र भी क्लेश को नहीं प्राप्त होय है। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो,सर्व प्रकार इस काय को अशुचिमय जान कर संयम विषे वा महा घोर उग्रोग्र तप विषे लगाय कर परम पवित्र मोक्षका साधन करो॥ इतिअशुचि भावना॥

७ श्री सुकुमाल मुनि सातमी आश्रव भावना का इस प्रकार चिन्तवन करें हैं कि—यह संसारीजीव पांच मिथ्यात्व, बारह अव्रत,पच्चीसकषाय, पंद्रह योग,इन सत्तावन प्रत्ययन कर के संचय रूप भये ऐसे जे अशुभ कर्म के आश्रव, तिन कर छिद्र सहित नावकी नाईं संसार समुद्र विषे डूबे हैं, जिस भव्य जीवने तप, ध्यान और क्षमादिकों कर कर्माश्रवका निरोध किया, उस भव्य जीव के मनो वांछित संयम, संवर, निर्जरा और मोक्ष सिद्ध भये, और उपसर्ग के दुःख कर जो मेरा मनआज मलीन होय तो मलीन मन कर के पाप ही का आश्रव होय, और फिर उस पापाश्रव से अनंत संसार होय, और उस संसार विषे बडे बडे पंडितों से भी नहीं कहा जाय ऐसा अत्यंत तीव्र घोर दुःख है। ऐसा विचार कर वह सुकुमाल मुनि मोक्ष का अर्थी उत्कट कष्टको सहे है।यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत आश्रव के महान दोष जान भोज्ञानी पंडित जन हो, मन वचन काय से कर्म रूप वैरी का विरोध कर आश्रव का अवरोध करो॥ इति आश्रव भावना॥

८ श्री सुकुमाल मुनि सम्वर भावना का इस प्रकार चिन्तवन करे हैं कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान

चारित्र, तप कर और मन वचन काय के योग को निरोध कर, और धर्म शुक्ल ध्यान कर जो महंत पुरुष के कर्माश्रवका निरोध होय सो संवर है। कैसा है संवर ? अनंत गुण रत्नों का समुद्र है, और संवर कर सहित किये हुये अल्प तप व्रतादिक भी भव्य जीवों के सर्व काल विषे महान फल को फलें हैं, और संवर बिना घोर तप व्रतादिक कुछ भी फलदाई नहीं, उलटे अशुभ कर्म के बंध के कारण होय हैं, और ऐसा दुस्सह घोर उपसर्ग होते हुए धीर बीर पुरुष एकाग्र चित्त कर शुभ ध्यानोंसे जो संवर करे है सो सवर सकल अर्थ की सिद्धि का दायक है, और संसार के कारण जे घोर पाप रूप वैरी उनका घात करे है, ऐसे विचार कर संवर के अर्थ ऐसा वह सुकुमाल मुनि आत्मध्यान से रंचमात्र भी नहीं चलायमान होय है। यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत संवर से प्रकट भये जे ऐसे सारभूत गुण उन को जानकर भो भव्य जन हो, उत्तम अनुपम गुणों की प्राप्ति के अर्थ मन बचन काय के निग्रह से सदा-कालसंवर करो ॥ इति संवर भावना ॥

९ श्रीसुकुमाल मुनि नवमी निर्जरा भावना का चितवन इस प्रकार करे हैं कि सर्वज्ञ देवने सविपाक और अविपाक के भेदकर निर्जरा दो प्रकार की कहीहैं, सो सविपाक निर्जरा तो सर्व संसारी जीवों के होय है, और अविपाक निर्जरा ध्यानी मुनिराजों के ही होय है, वीतरागी आत्मध्यानी मुनिराजों करके उग्रोग्र तपश्चरण कर संवर सहित जो निर्जरा यहां करिये है सो अविपाक निर्जरा है,

कैसी है अविपाक निर्जरा ? [दया कहिये]आत्मा की रक्षा, और मुक्ति कहिये समस्त कर्मों का अभाव आदि गुण रत्नों की खान है, और कर्मों को स्वयमेव उदय में लाकर क्षय करनेहारी है। ऐसी अविपाक निर्जरा सत्पुरुषों के सदाकाल होय है। अथवा संवर सहित मुक्ति के अर्थ सविपाक निर्जरा भी करिये है। भावार्थः—संवर सहित दोनों ही निर्जरा मुक्ति की कारण हैं, अहो यह सविपाक निर्जरा अपने कर्मके उदयसे स्वयमेव मेरे भाग्य से उदय भई,कैसी है सविपाक निर्जरा ? पूर्वकाल में संचय किये जो अशुभ कर्म रूप वैरी तिनको नाश करन हारी है, वह निर्जरा का अर्थ सुकुमाल मुनि इस भांत विचार समस्त मन वांछित का दायक ऐसी परीषह कर सहित मेरु समान निश्चल भया। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो, सार भूत मुक्ति आदि समस्त गुणों की उपजावन हारी ऐसी निर्जरा को जान कर मोक्ष सुख के अर्थ सुकुमाल मुनि की तरह उग्रोग्र तपश्चरण कर निरंतर अविपाक निर्जरा का उपाय करो॥ इति निर्जरा भावना ॥

१० श्रीसुकुमाल मुनि लोक भावना का चितवन इस प्रकार करे हैं कि—अधोलोक, मध्य लोक, उर्ध्व लोकके भेदकर तीन प्रकार यह लोक जिनेंद्र देव ने अकृत्रिम और शाश्वत कहा है,कैसा है लोक ? दुःख और सुख और उभय कहिये सुख दुःख दोनोंकर आश्रित है,तहां अधो लोक विषे सात नरक धरामें तो सर्वथा महान घोर दुःखही है, सुख का लेश भी नहीं,और मध्य लोक विषे किसी जगह सुख

है, किसी जगह दुख है, किसी जगह सुख दुःख दोनों मिश्रित हैं, और इस लोक के उर्ध्वभाग विषे स्वर्गादिकों में सुख है, और तीन लोक के शिखर पर नित्य अविनाशी अनंत गुण और अनंत सुखों का सागर ऐसा शिवालय है। और परमार्थ जो शुद्ध निश्चय उस कर ज्ञानी जीवों के चित्त विषे मोक्ष विना यह समस्त लोक दुखों का भाजन ही भासे है, और इस लोक विषे अधोगति में तथा तिर्यंच की बासठ लाख योनि विषे कर्मों के वस से मैंने छेदन भेदनादि संबंधी महान घोर दुःख भोगे सो यह दुःख कितना है ? कुछ भी नहीं, इस दुःख को कौनसा धीरवीर दुःख मानें ? कोई भी ज्ञानी दुख नहीं मानें। ऐसे विचार कर वह सुकुमाल मुनि आकुलता रहित ध्यान विषे एकाग्रचित्त भया॥ यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत परमागम से इस लोक को दुःखदायी जान कर हे भव्यजीव हो, यम नियमादिकों कर लोक के शिखर पर शिवालय का साधन करो। इति लोकभावना॥

११ श्रीसुकुमाल मुनि ग्यारवां बोधि दुर्लभ भावना को इस प्रकार भावते भये कि—चार गति चौरासी लाख योनि रूप संसार विषे भ्रमण करते ऐसे मिथ्या दृष्टि पापी जीवों को निश्चयकर यह मनुष्य जन्म का लाभ निधि समान अति दुर्लभ है। और इस मनुष्य जन्मके भाल से भी आर्य खंड का लाभ दुर्लभ है, और आर्य खंड के लाभ से भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य संबंधी उत्तम कुल विषे जन्म का लाभ महान् दुर्लभ है, और उच्च कुल विषे जन्म पाने से भी दीर्घ आयु का पाना बहुत

दुर्लभ हैं, और दीर्घ आयु के लाभ से भी निर्मल सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धि का पावना अत्यंत दुर्लभ है, और निर्मल बुद्धि के लाभ से भी पांचों इंद्रियों की परिपूर्ण सामग्री का पाना महान् कठिन है, और इन समस्त सामग्री का लाभ होते हुए भी सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक् तप और वीतरागी निर्ग्रंथ गुरु का सेवन आदि सामग्री का लाभ निधि समान उत्तरोत्तर अति दुर्लभ है, इत्यादि० उत्तरोत्तर दुर्लभ पने से अत्यंत दुष्प्राप्य ऐसी जो सम्यग्दर्शनादिक की एकता रूप बोधि, उसे पाय कर जो भव्य जीव बड़े यत्न से मोक्ष का साधन करे हैं उनही भव्य जीवों के यहां बोधि का लाभ सफल होय है, और मनुष्य जन्म का लाभ होते हुए भी जो मूर्ख मिथ्या दृष्टि पापी जीव सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रादिक विषे प्रमाद करे हैं सो पापी जीव संसार रूप गहन अटवी विषे अनंतानंत काल पर्यंत परिभ्रमण करे है, कैसी है बोधि ? परलोक विषे मनोवांछित अर्थ की साधन हारी है,अब इस घोर उपद्रव से जो मैं सम्यग् दर्शनादि गुणोंसे गिर(ड) जांऊ तो आगामी काल में मेरा दीर्घ संसार विषे परिभ्रमण होय । ऐसे विचार वह सुकुमाल मुनि मेरु समान अचल होता भया। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्य जीव हो, मनुष्य पर्याय सम्यग् दर्शन आदि मोक्ष मार्ग की सामग्री पाय कर तप योगादिकों से निर्वाण का साधन करो ॥ इति बोधिदुर्लभ भावना ॥

१२ श्रीसुकुमाल मुनि धर्म भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि—जो अपार संसार के

चारित्र, तप कर और मन वचन काय के योग को निरोध कर, और धर्म शुक्ल ध्यान कर जो महंत पुरुष के कर्माश्रवका निरोध होय सो संवर है। कैसा है संवर ? अनंत गुण रत्नों का समुद्र है, और संवर कर सहित किये हुये अल्प तप व्रतादिक भी भव्य जीवों के सर्व काल विषे महान फल को फलें हैं, और संवर बिना घोर तप व्रतादिक कुछ भी फलदाई नहीं, उलटे अशुभ कर्म के बंध के कारण होय हैं, और ऐसा दुस्सह घोर उपसर्ग होते हुए धीर वीर पुरुष एकाग्र चित्त कर शुभ ध्यानोंसे जो संवर करे है सो संवर सकल अर्थ की सिद्धि का दायक है, और संसार के कारण जे घोर पाप रूप वैरी उनका घात करे है, ऐसे विचार कर संवर के अर्थ ऐसा वह सुकुमाल मुनि आत्मध्यान से रंचमात्र भी नहीं चलायमान होय है। यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत संवर से प्रकट भये जे ऐसे सारभूत गुण उन को जानकर भो भव्य जन हो, उत्तम अनुपम गुणों की प्राप्ति के अर्थ मन वचन काय के निग्रह से सदाकाल संवर करो ॥ इति संवर भावना ॥

९ श्रीसुकुमाल मुनि नवमी निर्जरा भावना का चिंतवन इस प्रकार करे हैं कि सर्वज्ञ देवने सविपाक और अविपाक के भेदकर निर्जरा दो प्रकार की कहीहैं, सो सविपाक निर्जरा तो सर्व संसारी जीवों के होय है, और अविपाक निर्जरा ध्यानी मुनिराजों के ही होय है, वीतरागी आत्मध्यानी मुनिराजों करके उग्रोग्र तपश्चरण कर संवर सहित जो निर्जरा यहां करिये है सो अविपाक निर्जरा है,

कैसी है अविपाक निर्जरा ? [दया कहिये]आत्मा की रक्षा, और मुक्ति कहिये समस्त कर्मों का अभाव आदि गुण रत्नों की खान है, और कर्मों को स्वयमेव उदय में लाकर क्षय करनेहारी है। ऐसी अविपाक निर्जरा सत् पुरुषों के सदाकाल होय है। अथवा संवर सहित मुक्ति के अर्थ सविपाक निर्जरा भी करिये है। भावार्थः—संवर सहित दोनों ही निर्जरा मुक्ति की कारण हैं, अहो यह सविपाक निर्जरा अपने कर्मके उदयसे स्वयमेव मेरे भाग्य से उदय भई,कैसी है सविपाक निर्जरा ? पूर्वकाल में संचय किये जो अशुभ कर्म रूप वैरी तिनको नाश करन हारी है, वह निर्जरा का अर्थ सुकुमाल मुनि इस भांत विचार समस्त मन वांछित का दायक ऐसी परीषह कर सहित मेरु समान निश्चल भया। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो, सार भूत मुक्ति आदि समस्त गुणों की उपजावन हारी ऐसी निर्जरा को जान कर मोक्ष सुख के अर्थ सुकुमाल मुनि की तरह उग्रोग्र तपश्चरण कर निरंतर अविपाक निर्जरा का उपाय करो॥ इति निर्जरा भावना ॥

१० श्रीसुकुमाल मुनि लोक भावना का चिंतवन इस प्रकार करे हैं कि—अधोलोक, मध्य लोक, उर्ध्व लोकके भेदकर तीन प्रकार यह लोक जिनेंद्र देव ने अकृत्रिम और शाश्वत कहा है,कैसा है लोक ? दुःख और सुख और उभय कहिये सुख दुःख दोनोंकर आश्रित है,तहां अधो लोक विषे सात नरक धरामें तो सर्वथा महान घोर दुःखही है, सुख का लेश भी नहीं,और मध्य लोक विषे किसी जगह सुख

है, किसी जगह दुख है, किसी जगह सुख दुःख दोनों मिश्रित हैं, और इस लोक के उर्ध्वभाग विषे स्वर्गादिकों में सुख है, और तीन लोक के शिखर पर नित्य अविनाशी अनंत गुण और अनंत सुखों का सागर ऐसा शिवालय है। और परमार्थ जो शुद्ध निश्चय उस कर ज्ञानी जीवों के चित्त विषे मोक्ष विना यह समस्त लोक दुखों का भाजन ही भासे है, और इस लोक विषे अधोगति में तथा तिर्यंच की बासठ लाख योनि विषे कर्मों के बस से मैंने छेदन भेदनादि संबंधी महान घोर दुःख भोगे सो यह दुःख कितना है ? कुछ भी नहीं, इस दुःख को कोनसा धीरवीर दुःख मानें ? कोई भी ज्ञानी दुख नहीं मानें। ऐसे विचार कर वह सुकुमाल मुनि आकुलता रहित ध्यान विषे एकाग्रचित्त भया॥ यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत परमागम से इस लोक का दुःखदायी जान कर हे भव्यजीव हो, यम नियमादिकों कर लोक के शिखर पर शिवालय का साधन करो। इति लोकभावना॥

११ श्रीसुकुमाल मुनि ग्यारवां बोधि दुर्लभ भावना को इस प्रकार भावते भये कि—चार गति चौरासी लाख योनि रूप संसार विषे भ्रमण करते ऐसे मिथ्या दृष्टि पापी जीवों को निश्चयकर यह मनुष्य जन्म का लाभ निधि समान अति दुर्लभ है। और इस मनुष्य जन्मके भाल से भी आर्य खंड का लाभ दुर्लभ है, और आर्य खंड के लाभ से भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य संबंधी उत्तम कुल विषे जन्म का लाभ महान् दुर्लभ है, और उच्च कुल विषे जन्म पाने से भी दीर्घ आयु का पाना बहुत

दुर्लभ है, और दीर्घ आयु के लाभ से भी निर्मल सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धि का पावना अत्यंत दुर्लभ है, और निर्मल बुद्धि के लाभ से भी पांचों इंद्रियों की परिपूर्ण सामग्री का पाना महान् कठिन है, और इन समस्त सामग्री का लाभ होते हुए भी सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक् तप और बीतरागी निर्ग्रंथ गुरु का सेवन आदि सामग्री का लाभ निधि समान उत्तरोत्तर अति दुर्लभ है, इत्यादि उत्तरोत्तर दुर्लभ पने से अत्यंत दुष्प्राप्य ऐसी जो सम्यग्दर्शनादिक की एकता रूप बोधि, उसे पाय कर जो भव्य जीव बडे यत्न से मोक्ष का साधन करे हैं उनही भव्य जीवों के यहां बोधि का लाभ सफल होय है, और मनुष्य जन्म का लाभ होते हुए भी जो मूर्ख मिथ्या दृष्टि पापी जीव सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रादिक विषे प्रमाद करे हैं सो पापी जीव संसार रूप गहन अटवी विषे अनंतानंत काल पर्यंत परिभ्रमण करे है, कैसी है बोधि ? परलोक विषे मनोवांछित अर्थ की साधन हारी है,अब इस घोर उपद्रव से जो मैं सम्यग् दर्शनादि गुणोंसे गिर(ड) जांऊ तो आगामी काल में मेरा दीर्घ संसार विषे परिभ्रमण होय । ऐसे विचार वह सुकुमाल मुनि मेरु समान अचल होता भया । यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्य जीव हो, मनुष्य पर्याय सम्यग् दर्शन आदि मोक्ष मार्ग की सामग्री पाय कर तप योगादिकों से निर्वाण का साधन करो ॥ इति बोधिदुर्लभ भावना ॥

१२ श्रीसुकुमाल मुनि धर्म भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि—जो अपार संसार के

दुःख समुद्र से उद्धार कर संसारी जीवोंको शिवालय विषे अथवा सौधर्मादि सर्वार्थ सिद्धि पर्यंत शुभ स्थानक विषे धारण करे है। सो सर्वज्ञ भाषित महान् धर्म है। उसके भेद१०हैं। एक उत्तम क्षमा,२उत्तम मार्दव, ३उत्तम आर्जव, ४उत्तम सत्य, ५उत्तम शौच, ६उत्तम संयम,७उत्तम तप, ८उत्तम त्याग,९उत्तम आकिंचन्य १० उत्तम ब्रह्मचर्य। यह १०लक्षण धर्म भव्यजीवोंके परम धर्मके कारण हैं इस उत्तमक्षमादि दश लक्षण धर्म के सेवन करने से मुनिराज के महाव्रतादिक के पालन रूप परम धर्म मोक्ष का दायक होय है। और इस दश लक्षण धर्म के सेवन विना और दुर्द्धरकाय क्लेशादिक कर मोक्ष का लाभ कभी भी नहीं होय है। और तीनलोक विषे सब संपदा निवास आदि जो कुछ सुन्दर सुहावणी वस्तु दीखे हैं सो समस्त धर्म रूप कल्प वृक्षका फल है। और इस परीषह के प्राप्त होते हुए जो मेरा मन विकार पनाको प्राप्त होय तो मेरे उत्तम क्षमा धर्म कहां रहा ? ऐसे विचार सो सुकुमाल मुनि उस स्यालनी कृत उपसर्ग को समभाव से सहे है॥ यहां आचार्यकहे हैं कि इस भांत समस्त धर्म का फल जान कर हे धर्मात्मा भव्य जीव हो, उत्तम क्षमादि दश लक्षणों करके बडे यत्न से एक केवल सर्वज्ञभाषित धर्म ही का सेवन करो॥ इति धर्म भावना॥

सो जो भव्य जीव इन बारह अनुप्रेक्षाओं को निरंतर चिंतवन करे हैं तिन भव्य जीवों के रागादिक वैरी क्षीण होय हैं।और धर्म विषे और धर्मके फल विषे अत्यंत प्रीति बढे है, इस भांत जान

कर हे बुध जन हो ! अशुभ कर्म के नाश के अर्थ इन बारह शुभ भावनाओं के चिन्तन विषे निरंतर चित्त करो, कैसी हैं यह बारह भावना? अनंत गुणों की उपजावन हारी हैं, ऐसे इन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन कर उस समय उस सुकुमाल के हृदय विषे तुरत ही परम वैराग्य प्रकट भया, तब इस वैराग्य भाव करके निज आत्मा को अपने देह से भिन्न जान कर वह धीर बीर सुकुमाल मुनिराज, शुद्ध आत्माको निर्विकल्प एकाग्रचित्त कर अंतरंग विषे निरंतर चितवन करता भया। और स्यालनी कृत अत्यंत तीव्र वेदना को जानता हुआ भी यह सुकुमाल मुनि उस आत्म ध्यानके प्रभाव करके चित्त विषे कदाचित् भी रंचमात्र खेद को नहीं प्राप्त होय है, उस पीछे वह धीरबुद्धि सुकुमाल मुनि स्यालनी कृत प्रचण्ड वेदना को जीत कर इसी उपसर्ग से वज्र समान अभेद्य भया, कैसा सुकुमाल मुनि? मेरु समान अचल है आकृति जिसकी, अथवा महापापिनी दुर्बल स्यालनी पिल्ली सहित प्रथम दिन विषे तो क्रम से इस सुकुमाल के गोडे तक पग खाये, और दूजे दिन जांघतक भक्षणकरी। तीजे दिन अर्द्धरात्रीके समय विषे बलात्कार सुकुमालके उदर को विदारण कर वह पापिनी स्यालनी ने अपने मुख करके उसके उदर के मध्यसे आंतडीयोंके समूह को खेंचकर आहिस्ता आहिस्ता खाने का प्रारम्भ किया, उस समय उदरके विदारण से लगाय प्राणों का अंत पर्यंत भले प्रकार चार आराधना का आराधन कर उस सुकुमाल मुनिनेधर्म ध्यान विषे तल्लीन होय बहुत सावधान पने से प्रायोग गमन संन्यास मरण कर प्राणों का त्याग किया, उस पीछे आत्म ध्यान के प्रभाव से

बहुत पाप कर्मों का घातकर प्रचुर पुण्यके उदय से वह अवंती सुकुमालमहा मुनिराज सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त भये । वैसी है वह सर्वार्थसिद्धि? समस्त मनो वांछित कार्यों की सिद्धि की देने हारी है, और महा रमणीक परमपवित्र है, और शिवालय के अधोभाग विषे बारह योजन नीचे तिष्टे है और मुक्ति रूपी कामिनी की सारभूत निकट वासिनी सखी है ॥ भावार्थ–एक भवमें ही मुक्ति कामिनि से मिलावन हारा परम प्रवीण सखी है, इस भांत यह सुकुमाल पूर्व पुण्य के प्रभाव से परम अनुपम भोग संपदा को भोग कर, और राग के अभाव से विधि पूर्वक परम पुनीत भगवती दीक्षा अंगीकार कर, और स्यालनी कृत महान घोर परिषहको सहकर परम उत्कृष्ट सुखों की खान ऐसी सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त भये । ऐसे जान कर हे भव्यजीव हो, शिवालय के अर्थ धीरपना अंगीकार करो । ऐसा उपदेश है, और जो बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रहसे रहित मोक्षमार्गके सन्मुख सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि अनेक गुणोंके भाजन समस्त परीषहरूप वैरीके जीतन हारे परमधीर वीर तीन लोकविषे पूजनीक संसार सागरके पारको प्राप्त भये ऐसे जो सुकुमालादि समस्त महामुनि, तिनकी स्तवन तिनके ही गुणानुवाद कर मैं सकलकीर्ति नामाचार्य करूं हूं । इत्याचार्य सकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ उसकी देश भाषामें वचनिका विषे सुकुमाल मुनि के स्यालनी कृत उपसर्ग को विजय, और बारह भावनाको चितवन कर सर्वार्थसिद्धि विषे गमन का है वर्णन जिसमें ऐसा अष्टम सर्ग समाप्त भया ॥

नवम अध्याय

(यशोभद्रा सेठानी आदि का तप कर स्वर्ग में जाना)

चौपाई--चार घात घातक अरहंत। वसुविधि रहित सिद्ध शिवकंत॥
रत्नत्रयधारक सवसाध। मंगलकार नमं तह बाद॥ १॥

अथानंतर–जिस समय सुकुमाल मुनि सर्वार्थ सिद्धी को पधारे उसही समय इस सुकुमाल मुनिके घोर उपसर्ग के विजय के माहात्म्य से इंद्रादिक देवन के आसन कंपायमान भये, तब इंद्रादिक देव अवधिज्ञान के बलकर के उस सुकुमाल मुनिराज का परम उत्कृष्ट मरण जानकर आश्चर्य सहित हुए हुए हर्ष कर भक्ति के अनुराग से ऐसे स्तुति करते भये, अहो, यह सुकुमाल महामुनि धीरपना कर शोभायमान, अनेक गुण रत्नों का आकार, तीनलोक विषे बंदनीय, पूजनीय, महा ज्ञानी समस्त भव्य जीवों के अग्रेश्वर, महागुणवान् ऐसा वह मुनि अत्यंत कोमल कायका धारक था। सो ऐसे अत्यंत दुर्द्धर घोर उपसर्ग को समभाव से जीतता भया, इस भांत तिस धीर बीर सुकुमाल

मुनि की परमस्तुति कर और समस्त देवों कर सहित अपने अपने वाहन पर चढे, और नाना जाति के वादित्रों के नाद कर, और जय जिनेंद्र, जय जिनेंद्र, इत्यादि घोषणा कर दिशाओंको पूर्ण करते ऐसे इंद्रादि महर्द्धिक देव, हर्ष सहित पुण्य की प्राप्ति के अर्थ बड़ी विभूति कर सुकुमाल मुनि के पूजन के निमित्त महीतल विषे आये, उस बनविषे सुकुमाल मुनि के शरीर की इंद्रादिक देव बड़ी विभूति कर देवलोक संबंधी पूजन के द्रव्य कर उत्सव सहित महान् पूजाकर अपने स्थानक को गए ॥

अथानंतर–उस समय वन विषे देवों के किये जय जय आदि शब्दों और वादित्रों के परम रमणीकनाद को सुनकर वह सुकुमाल की माता सुकुमाल मुनि के तप और परीषह और परलोक गमन का वृतांत सुन समस्त कुटुंब आदि स्वपरजन सहित समस्त सज्जन पुरजन को बुलाय वह यशोभद्रा सेठानी वृषभांक नृप सहित जहां सुकुमाल का कलेवर था उस वनस्थल में गई, वहां सुकुमाल के अर्ध भक्षित देह को देख कर अंतःकरण विषे शोक कर आकुल भई हुई वह यशोभद्रा दुःख करके विव्हल वहां मूर्छाखाकर भूमि में पड़ी, और सुकुमाल की बत्तीस प्राण वल्लभा भरतार के देह के दर्शन मात्र से परम शोक को पायकर हा हा कार सहित रुदन करता भई, और समस्त बांधव भी, हाहाकार सहित रुदन करते भये, और वृषभांक नृप आदि राजा लोक और अन्य पुरवासी लोक सुकुमाल का धीरपना देखने से सुकुमाल की परम

प्रशंसा करतें हुए हृदय विषे बडे आश्चर्य को प्राप्त भये, उस पीछे वह सुकुमाल की माता यशोभद्रा स्वजन परजनों के संबोधने करके आहिस्ता आहिस्ता चेतना को पाय कर, सकल जनों से सुकुमाल की प्रशंसा सुन वह सेठानी संतुष्ट होय कर सुकुमाल के शरीर का पूजन कर अगर चंदन से उस का संस्कार करती भई, तिस पीछे जिस जिनालय विषे यशोभद्र मुनिराज तिष्ठे थे उस मंदिर विष धर्म की सिद्धि के अर्थ समस्त बंधुजन और वृषभांक राजा सहित मुनि के पास गई। और यशोभद्र मुनिराज को प्रणाम कर हर्ष सहित कोमल बाणी कर के ऐसे पूछती भई। हे भगवन् यहां सुकुमाल के ऊपर मेरा अत्यत स्नेह कैसे भया ? सो आप कृपाकर स्नेह का कारण कहो, इस भांत यशोभद्रा के प्रश्न से वायुभूत के भव से लगाय अच्युत स्वर्ग विषे गमन पर्यंत समस्त जीवों की पूर्व भव संबंधी कथा को पूर्वोक्त प्रकार वर्णन कर और अशेष पुण्य के उदय से इन का यहां आगमन, संबंधी समीचीन कथा को वह यशोभद्र मुनिराज अवधि ज्ञान से इस भांत कहते भये ॥"

अथानंतर–सुकुमाल को पूर्वभव विषे जो नागश्री का पिता नागशर्म ब्राह्मण उसका जीव देव भया था, सो तो अच्युत स्वर्गसे चयकर इंद्रदत्त सेठ और गुणवती सेठानी का सुरेंद्रदत्त नामा पुत्र, महा धर्मात्मा, विषय भोगसे अत्यंत विरक्त, महाधनवान्, राजश्रेष्ठी तेरा भर्त्तार भया, और चंपापुरी का चंद्रवाहन राजाका जीव जो देव भया था सो आरण स्वर्गसे चयकर, सर्वयशा नामा वैश्य और यशोमती नामा

स्त्री उनके में यशोभद्रनामा पुत्र होता भया, सो मैंने कुमार अवस्था विषे ही संसार देह भोगोंसे उदासीन श्रीगुरुके पास भगवती दीक्षा धारणकरी, समीचीन तपके बल से अवधि मन पर्यय दोही ज्ञानको प्राप्त भया, और त्रिदेवी ब्राह्मणी का जीव जो देव भया था सो अच्युत स्वर्ग से चयकर सम्यग्दर्शनके अभाव से सुकुमाल विषे अत्यंत स्नेहवती ऐसी तू मेरी बहण यशोभद्रा भई। और नागश्री का जीव पद्मनाभ देव भया था सो अच्युत स्वर्ग से चयकर यहां पुण्य के प्रभाव से जगत विषे विख्यात ऐसा धर्मात्मा सुकुमाल भया, और राजगृह नगर का राजा सुबल का जीव जो देव भयाथा सो अच्युत स्वर्ग से चय कर पुण्य के उदय से यहां यह वृषभांक राजा भया। और कौशांबी का राजा अतिबल का जीव जो देव भया था सो भी आरण स्वर्ग से चय कर यहां इस वृषभांक राजा के, यह कनक ध्वज नामा पुत्र भया, इस भांत यशोभद्र मुनिराज के मुखरूप चंद्रमा से उत्पन्न भया जो सत्यार्थ वचन रूप अमृत उसका नृपादिक सहित पानकर, और आयु के अंत समय सम भावों से सुकुमाल की सर्वार्थ सिद्धि विमान विषे भली शुभगति जान कर सो आरत को छोड़ आनंद सहित संवेग को प्राप्त होय सुकुमाल का इस भांत प्रशंसा करती भई अहो, इस अत्यंत धर्मात्मा सुकुमाल ने यह देवों को भी दुर्लभ ऐसी भोग संपदा का शीघ्र ही त्याग किया, और भगवती दीक्षा अंगीकार कर ऐसा घोर तप किया जो किसी से बन न आवे, और तीन दिन पर्यंत स्यालनी कृत ऐसे घोर उपसर्ग को जीत कर समभावों

से प्राण छोड सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त भया, ऐसे सुकुमाल की अत्यंत प्रशंसा, कर वह सुकुमाल की माता मोहरूपी विष का वमन कर, संसार सपदा गृह आदक विषे परम संवेग को पाय कर और पुत्र संबंधी अपने मोहकी निंदाकर, यह यशोभद्रा तप ग्रहण करने को उद्यमी भई। उस समय सुकुमालकी चार प्राण प्रिया जो गर्भवतीं थीं उनको सर्व घर संपदादिक सोंप कर अवशेष अठाईस पुत्र वधु और और बहुत बंधु जनों सहित सेठानी यशोभद्रा तुरत ही बाह्य अभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर मुक्ति के अर्थ दीक्षाग्रहण करती भई। और राजा वृषभांक ने भी इस यशोभद्र मुनिराजके समीप अपने पूर्व भव को सुनकर परम वैराग्यकी सामर्थ्यसे अपनेछोटे पुत्रके अर्थ राज संपदा देकर संसार देहभोगोंसे विरक्त ऐसे बहुत राज पुत्रों सहित और कनकध्वज सहित समस्त संपदाको त्यागकर मन वचनकाय की विशुद्धता से मोक्ष के अर्थ मुक्ति की मातासमान जो भगवती दीक्षा वह अंगीकार करी॥

अथानंतर–वह समस्त मुनि राज परम तप करते और श्रुति का अध्ययन करते और पर का विचार करते और नाना देशों में विहार करते और निर्जन बन विषे निवास करते, और परमदीक्षा को पालते हुए, मोक्ष मार्ग विषे स्थित होते भये। सो इन समस्त योगी मुनिराजों में १ सुकुमाल का पिता सेठ सुरेंद्रदत्त, २ सुकुमाल का मामा यशोभद्र ३ उज्जयिनी का राजा वृषभांक ४ और वृषभांक का पुत्र कनकध्वज यह चार महामुनि चरम शरीरी तद्भव मोक्ष

गामी थे। सो शुक्ल ध्यान रूपी खड्ग से बलात्कार समस्त कर्म रूपः वैरी का घात कर इंद्रादिक देवों से पूज्यता पाय, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक ज्ञान, क्षायक दर्शन, अनंत वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व अगुरु लघुत्व, और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों को पाय कर अनुपम अनंत सुख कर परिपूर्ण ऐसे परमधाम को प्राप्त भये, और शेष समस्त मुनिराज अपने अपने तपश्चरण के अनुसार सौधर्म स्वर्ग आदि सर्वार्थ सिद्धि पर्यंत उत्तम पद को प्राप्त भये और सुकुमाल की माता यशोभद्रा आर्यिका तीव्र तप के प्रभाव से अच्युत कल्प को प्राप्त भई, और कई एक आर्यिका दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन के प्रभाव से सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत युगल विषे बडी ऋद्धि के धारक महर्द्धिक देव भये, और कई एक आर्यिका तप के प्रभाव से सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत कल्पविषे अत्यंत रूपवती मनोहर देवांगना भई ॥

अथानंतर–सो सुकुमाल मुनिराज का जीव पुण्य के उदय से सर्वार्थ सिद्धि विमान विषे उपपाद शिला के मध्य रत्न मयी कोमल शय्या विषे अंतर मुहूर्त कर संपूर्ण नवयौवन को पाय दिव्य वसन भूषण और पुष्पमालादीप्त कांत आदि कर विभूषित कहिये शोभायमान ऐसा अहमिंद्रदेव उस उपपाद शय्या से उठकर मानो साक्षात् पुण्य का पुंज ही है। वहां ऐसे अहमिंद्र देवों को नैनों से अवलोकन कर अवधि ज्ञान के प्रभाव से पूर्व भव संबंधी समस्त प्रचुर तप का फल जानकर और साक्षात् तप

का फल देख कर धर्म विषे दृढ बुद्धि धारण करता भया, उस पीछे अत्यंत पुण्यात्मा वह अहमिंद्रदेव धर्म की सिद्धी के अर्थ उत्तंग,दिव्य रत्नमणिमय सुवर्णमय जिन मंदिर विषे गया, वहां अद्भुत तेज के पुञ्ज जो श्रीजिनदेव के प्रतिबिंब उनको प्रणाम कर और परम पुनीत पूजाके द्रव्य करके भक्ति युक्त आठ प्रकार पूजन विधान कर अहमिंद्रों कर सहित सो पुण्यात्मा पुण्यका उपार्जन करता भया, उस पीछे वह अहमिंद्र देव अपने निवास विषे जायकर पूर्वभव विषे उग्र उग्र तपकर उपार्जन करी ऐसी जो समीचीन विमान आदि समस्त अपनी संपदा तिसको अंगीकार करता भया। और अपने निवास विषे तिष्ठता यह अहमिंद्र देव त्रैलोक्यवर्ती समस्त जिनबिंब और जिन मंदिरों को अपने अवधिज्ञान से अवलोकन कर प्रणाम करता भया, और अपने स्थान में तिष्ठता ही यह अहमिन्द्र सदाकाल पंचकल्याणक विषे श्री जिनेंद्रतीर्थंकर देवों को सिर नवाय भक्ति सहित स्तुति नमस्कारादि करे है, और गणधरादि महंत केवलियों के केवल ज्ञान निर्वाण कल्याण के काल में यह अहमिंद्र देव प्रणामादि करे हैं, और वहां कोई अवसर विषे विना बुलाये स्वयमेव अपनी इच्छा से आये ऐसे जो अहमिंद्र देव तिन कर सहित सो अहमिन्द्र धर्म की करणहारी समीचीन धर्म गोष्टी करे है, इत्यादिक नाना प्रकार पुण्यका उपार्जन करता ऐसा वह अहमिंद्र देव पूर्व पुण्य के उदय से प्रविचार रहित अनुपम सुखों को निरंतर भोगवे है, और स्फाटिक मणी मय विमान विषे स्वभाव ही कर परम सुंदर अति मनोहर ऐसे महल वन पर्वता-

दिक विषे प्रीति से अहमिंद्रों कर सहित यथेच्छ क्रीडा करता और सदाकाल धर्मध्यान का चिंतवन करता वह अहमिंद्र देव सुख सागर के मध्य मग्न रहे है। इन अहमिंद्र देवों के स्वभाव ही कर परम रमणीक ऐसा अपना मनोहर शुभ स्थान विषे जो रति होय है सो रति और स्थान विषे कहीं ठौर कदाकाल भी नहीं होय है, इससे अपने परम उत्तम मनोहर स्थान को छोड कर अन्य स्थान विषे अहमिंद्र देवोंका गमन कभी भी नहीं होय है, और वह समस्त अहमिंद्र देव कैसे हैं समान ऋद्धि कर शोभायमान हैं, और जिन के हीनाधिक पना नहीं, सब ही समान पद कर सहित हैं। और जिन के लेश्या की विशुद्धता अवधिज्ञानका प्रमाण पांचों इंद्रियों के सुख और भोगोप भोग संपदा समानहै, सर्वही अहमिंद्र देव मंदरागी धर्मध्यान विषे सावधान परमस्नेह कर संयुक्त हैं। और जिनके परस्पर ईर्ष्या नहीं, मान बडाई नहीं और विकार कर रहित, सरल परिणाम के धारक, परम प्रवीण परम सौम्यरूप, साहश्य धर्म के फल से सर्व ही अहमिंद्र देव समान हैं, यहां मैं ही इंद्र हूं, मैं ही अहमिंद्र हूं, यहां मेरे सिवाय और कोई दूजा इंद्र नहीं है; ऐसे वह समस्त ही अहमिंद्र देव अपने उत्तम पद संबंधी महान सुख को अपने अपने हृदय विषे प्राप्त होय हैं, और स्वर्गविषे अनेक अप्सराओं के सहित केलि करते जो सुख होय है उस से असंख्यात गुण सुख अहमिंद्र देवों के पैंड पैंड में है, कैसा है अहमिंद्र देवों का सुख बाधा रहित है, और उपमा रहित है, और स्वात्मज कहिये अपने आधीन है, पराधीनता रहित है, और

प्रविचारता कर रहित है अर्थात् प्रविचार नामपांचो इंद्रियों के वियोग का है। सो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, यह भवनत्रिक और पहला सौधर्म स्वर्ग दूसरा ईशान इन चार स्थान के देवों के तो मनुष्य स्त्री के समान मैथुन के रतिकाल विषे काम सेवन है, और तीसरा स्वर्ग सनत्कुमार चौथा महेंद्र स्वर्ग के देवों के देवांगना के स्पर्शमात्र ही भोग सुख है, और पांचवां ब्रह्म, छठा ब्रह्मोत्तर, सातवां लांतव, आंठवां कापिष्ट इन चारस्वर्ग के देवों के देवांगना का रूप के अवलोकन मात्र ही भोगसुख है। और नवमा शुक्र, दशवां महाशुक्र, ग्यारवां सतार, बारवां सहस्रार इन चार स्वर्ग के देवों के देवांगना का बचन श्रवणमात्र ही भोग सुख है, और तेरवां आनत चौदवां प्राणत, पंद्रवां आरण सोलवां अच्युत इन चार स्वर्गों विषे देवों के केवल मन विषे विचार मात्र ही भोग सुख है, और नवग्रैवेयक, नव अनुदिश, पांच अनुत्तर विषे देवांगना नहीं, उस से समस्त अहमिंद्रों के मनका भी विकल्प नहीं। परम ब्रह्मचारी सदा प्रविचार रहित अप्रविचार हैं, कैसे हैं अहमिंद्र देव कामज्वर करके रहित हैं, संसार विषे परिपूर्ण पुण्य के उदय से समस्त दुःख रहित जो सर्वोत्कृष्ट सुख हैं सो संपूर्ण सुख सर्वार्थ सिद्धि निवासी अहमिन्द्र देवों के हैं। इत्यादिक सुख विषे भले प्रकार तल्लीन वह अहमिंद्र देव कैसा है तेतीस सागर की है आयु जिसकी और दिव्य मनोहर लक्षणों कर लक्षित है, और तेतीस हजार वर्ष व्यतीत भयें सर्व इन्द्रियों के सुखदायी अमृतमयी दिव्यमानसिक आहार को आस्वाद करे, और तेतीस पक्ष

के साढे सोला मास व्यतीत भये रंचमात्र एक स्वास लेवे है, और अपना अवधि ज्ञान कर त्रिलोक वर्ती समस्त मूर्तिक द्रव्यों को जाने है, और अपना अवधि ज्ञान का क्षेत्र पर्यंत विक्रिया करने विषेसमर्थ ऐसी जो विक्रया रिद्धि उसकर शोभायमान है। और उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या कर सहित है। और निरंतर धर्म ध्यान विषे तल्लीन है। और सात धातु, सात उपधातु मैल पसेव रोगादिक कर रहित दिव्य स्फटिक मणि समान उज्वल है, विक्रिय देह को धारण करे है, और एक हाथ प्रमाण ऊंचा है मनोहर काय जिसका और नेत्रों को जो उन्मेख कहिये टिमकाव उस कर रहित है, अर्थात् नेत्र टिमकारे नहीं, और आदि शब्द से शरीर की छाया नहीं पड़े है, और सुख के समुद्र के मध्य तिष्ठे है और समस्त अनिष्ट के संयोग कर रहित है, और इष्ट के वियोग करके रहित है, और समस्त दुःख करके रहित ऐसा वह अहमिंद्र देव इस सर्वार्थ सिद्धिविमान विषे सुख सहित स्थिति करता भया सो यह सुकुमाल का जीव अहमिंद्र देव इस सर्वार्थ सिद्धि विमान से चयकर इस ही जंबू द्वीप भरत क्षेत्र आर्यखंड विषे. क्षत्रियादिक तीन उत्तम कुलों में जन्म पायकर और धर्म रत्न के प्रभाव से समस्त कर्मों का नाश कर निश्चय से मोक्ष जावेगा, इस भांत शुद्ध निर्दोष चारित्र के प्रभाव से सो अहमिंद्र देव अनुपम सारभूत और दुःख के लेश मात्र कर भी रहित और समस्त विकार से रहित ऐसे परमसुख भोगवे है। यहां तक सुकुमाल मुनि का वर्णन संपूर्ण हुआ ॥

अथ धर्मोपदेश ॥

अब इस ग्रंथ के अंत विषे गृंथ रचिता श्री सकल कीर्ति आचार्य यह गृंथ रचने का तात्पर्य जो पाप का फल खोटी योनियों में महाघोर दुःख सहते हुए भ्रमण करना और धर्म का फल स्वर्गादिक में देवांगनाओं सहित महान सुख भोगना वर्णन कर जगत के जीवों पर दया भाव से उन के कल्याण के निमित्त धर्मोपदेश देवें हैं कि हे संसार में भ्रमण करने वाले जीव हो,इस धर्म के फल से वह नाग श्री का जीव श्री सकुमाल होय सर्वार्थ सिद्धी को प्राप्त हुवा। ओर इस धर्म के सेवन से ही उसके माता पिता आदि को उत्तम सुखों की प्राप्ति हुई। सो तुम भी ऐसे जान कर उत्तम सुख की प्राप्तिके अर्थ यहां चारित्र की शुद्धता कर सर्वज्ञ भाषित धर्मका सेवन करो। धर्म जो है सो अनंत गुणों का दायक है और समस्त दोषों का नाशक है,और ध्यानी मुनिराज धर्म ही का आश्रय करे हैं,और धर्म कर ही मोक्ष का सुख भले प्रकार साधिये है और धर्म से ही धर्मात्मा जीव अत्यंत उत्तम विभूति को पावे है, और धर्म से ही शोभायमान रूप संपदा प्राप्त होय है, और धर्म से ही संयमका लाभ होय है, और धर्म से ही महाघोर उपसर्ग का विजय होय है,और धर्म से ही एक भव में निर्वाण संपदा की करणहारी ऐसी अनुपम परम उत्कृष्ट सर्वार्थ सिद्धि की संपदा पाइये है, इस संसार विषे धर्म बिना उत्तम संपदा कहां से होय और पांचों इंद्रियों के मनोज्ञ विषयों का लाभ धर्म बिना कहां से होय। और समस्त लोगों

के मध्य मानपना धर्म बिना कहां से होय, और धर्म बिना अति मनोग्य रमणी का लाभ कहां से होय, और धर्म बिना यहां अपने वांछित अर्थ का लाभ कैसे होय, और यहां धर्म विना अपने मन की शुद्धता कहां से होय, और धर्म विना उत्तम धर्म जो निजात्म शुद्ध धर्म उसका लाभ कहां से होय, और धर्मबिना यहां यथाख्यात संयम का लाभ कहां से होय, और धर्म बिना इंद्र अहमिंद्र, तीर्थंकर चक्रवर्ती वलदेव वासुदेव, प्रतिवासुदेव, काम देव आदि उत्तम पदों का लाभ कैसे होयं, और धर्म बिना यहां सत्पुरुषों के बाह्य अभ्यंतर वैरियों का विजय कहां से होय, इस भांत जानकर भो वुध जन हो, तुम आत्म हित के अर्थ सर्वज्ञ भाषित अनुपम धर्म का सदाकाल बडे यत्न से मन वचन कायकी शुद्धता कर निरंतर सेवन करो, कैसा है धर्म ? समस्त संसार के दुःखों का घातक है और समस्त मनोवांछित अर्थ का प्रकट करन हारा है, और परमार्थ भूत आत्मिक सुख का अद्वितीय एक कारण है ऐसा जान कर मैं भी धर्म के तांई बारम्बार नमस्कार करूं हूं। और धर्म ही विषे निरंतर लगा हूं । धर्म के उपार्जनके वास्ते ही मैंने (सकलकीर्ति नामा आचार्यने) इस सारभूत चरित्र के रचनेका मिसकर अत्यंत धीर बीर श्रीसुकुमाल मुनि की यह स्तुतिकरी है कैसे हैं सुकुमाल महामुनि? तीन भवनोंकरके वंदनीय हैं। सो वह श्री सुकुमाल मुनी मेरे कर्मरूप वैरीकेविजय विषयिकसमस्त उपद्रवोंका घात करो। अपना अद्भुत वीर्य मुझे भी दो, और समस्त अशुभ कर्मों का बिनाश कर ऐसा समाधि मरण और अपने समस्त उत्तम क्षमा

दिक गुणों के समुदाय मुझे दो, यही मेरी उनसे प्रार्थना है, और अल्प श्रुत का धारक ऐसा जो मैं सकल कीर्ति नामा मुनि मुझ कर किया जो यह सुकुमाल चरित्र इस में समस्त अज्ञान संबंधी दोषों के घातक ऐसे बहुज्ञानी मुनिराज शुद्ध करो और इस सुकुमाल चरित्र की रचना विषे जो मैं प्र मादके बस कर अक्षर, स्वर, संधि तथा मात्रा और पदों के जोड़ने विषे जो मैं कुछ चूककरी हो सो समस्त मेरा अपराध हे महा भगवती परमेश्वरी जिन वाणी तुम क्षमा करो, और इस सुकुमाल चरित्र को जो मुनिराज मोक्ष की सिद्धी के अर्थ पढे हैं, सो मुनिराज समस्त श्रुति समुद्र का पार को पायकर परम पद का आश्रय करे हैं और जो निपुण ज्ञानी जन इस सुकुमाल चरित्र को परम सुख के लाभ के अर्थ सुने हैं सो पुरुष तुरत ही रागदोष का नाश कर परमबीत रागधर्म का सेवन करे हैं। कैसा है यह चरित्र बृष कहिये मुनिधर्म और श्रावक धर्म इन दोनों का बीज कहिये मूल कारण है। और कैसा है यह चरित्र समस्त राग भाव का बिनाशक है। और निर्मल समस्त सुखों की खान हैं। और अब मैं पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करूं हूं। कैसे वह पंच परमेष्ठी भगवान् बृषभ देव आदि वर्धमान जिन राज पर्यंत चौबीस तीर्थंकर कर अनंत गुणों के निवास समस्त लोक के परमेश्वर महेश्वर ऐसे अर्हंत परमेष्ठी और समस्त कर्मों कर रहित परमपद को प्राप्त भये परमपूज्य ऐसे अनंत सिद्ध परमेष्ठी और शिव के अभिलाषी समस्त मुनिराजों के हितकारी ऐसे आचार्य परमेष्ठी और द्वादशांग श्रुति समुद्र के पारगामी पच्चीस

कर उपदेश करो, इस भांति चन्द्रवाहन के प्रश्न करने से सूर्यमित्र मुनिराज भव्य जीवों के हित की सिद्धि के अर्थ और सकल जीवों के उपकार के अर्थ और धर्मकी वृद्धिके अर्थ नागश्रीके पर्वभव कहत भये ॥

हे राजन् धर्म और धर्म के फल विषे प्रीति की बढावन हारी नागश्री की कथा और वायुभूत के भव विषे हमारे संबंध का कारण और पुण्य पाप के उपार्जन कर अनुभव किये भवांतर विषे सुख दुःख आदि समस्त कथन तुझे कहूं हूं, सो तू अपने चित्त को एकाग्र कर सकल सभाजन कर, सहित श्रवण कर ॥

महान पाप के उपार्जन से नागश्री के जीवने भवावली विषे नाना प्रकार दुःख भोगे और अघ की करन हारी अनेक दुर्गति पाई फिर व्रतधारणकर संचय किया जो पुण्य का लेश तिस के फल से नागशर्म ब्राह्मण के यह सती नागश्रीनामा पुत्री भई है सो समस्त संबंध प्रकट पणे कर कहूं हूं तिसको अहोभव्य जीव हो, तुम एकाग्रचित्त कर सुनो यह तीसरा अधिकार पूर्ण भया यहां तीसरे अधिकार के अंत में श्री सकल कीर्ति मुनि इस ग्रथ के रचिता अंत मंगल के अर्थ श्रीपंच परमेष्ठि को नमस्कार करे हैं, कैसे हैं पंचपरमेष्ठि अनुपम गुणों के समुद्र और साक्षात् धर्म के स्वरूपके दिखाने विषे दीपक समान पंच महाव्रत रूप आभूषण के धरन हारे स्वर्ग-मुक्ति के कारण इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर पूजनीक और कर्म रूप वैरियों के जीतन हारे पांचों इंद्रियों के विषयों से पराङ्मुख ऐसे परमपूज्य

पंच परमगुरु अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु उनको मैं नमस्कार करूं हूं ॥

इत्याचार्य सकल कीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृतग्रंथ उसकी देश भाषामय वचनिका विषे कुशील परिग्रह के संबंध कर जीवों के प्रत्यक्ष दुःख देखने का और नागश्री संबंधी भवांतर के प्रश्न का है वर्णन जिसमें ऐसा तृतीय अधिकार समाप्त भया ॥



४ चौथा अध्याय

(नागश्री के भवों का वर्णन)

चौपाई—अर्हंत सिद्धसूर उवझाय। सकल साधु के प्रणमूं पाय।
जिननैं रागरोष निरजया। ते मुझ निज गुण दो कर दया॥

अथानंतर–इसही जंबूद्वीप विषे भरतक्षेत्र वत्सदेश विषे कौशांबी नामानगरी उसका राजा अतिबल, उसके प्राणों से भी प्यारी मनोहरी नामा पटराणी, और सकल शास्त्रों का ज्ञाता सोमशर्म नामा

ब्राह्मण पुरोहित, उसके काश्यपी नामा ब्राह्मणी उनके दो पुत्र थे, बड़ा अग्नि भूत छोटा वायु भूत दोनों भाई बाल पने से पिता के अति लाडले यथेच्छ क्रीडा करते थे बहुत उपायकर पिताने पढाये तो भी नहीं पढे, केवल मूर्ख ही रहे, किसी पाप के उदय कर उनका पिता सोमशर्म परलोक गया, तब राजा अति बल बिना विचारे अग्नि भूत वायु भूत को पुरोहित का पद दिया इस भांत वह दोनों भाई सोमशर्म के पुत्र शास्त्र के ज्ञान कर रहित विषय सुख भोगते तिष्ठते थे, उस समय अनेक देशों में भ्रमण करता और तर्क शास्त्र के विवाद कर अनेक वादियों के वाद के मद को दूर करता ऐसा एक विजय जिव्ह नामा वादी आय कर वादियों से वाद करने के अर्थ राजद्वार पर वाद पत्र (विज्ञापन) लगाया यहां वाद करने का अधिकार केवल पुरोहित का है अन्य का नहीं यह विचार कर अन्यवादियों ने वाद पत्र ग्रहण नहीं किया, तब राजा अतिबलने इन दोनों भाइयों को यह आज्ञा दी, कि हे द्विज पुत्रो, तुम अपनी बुद्धिमानी से इस वादी को वाद पत्र का अच्छी तरह उत्तर दो । तब वह अग्निभूत वायु भूत दोनों भाई तिस वाद पत्र को लेय शीघ्रही फाड डाला तब राजाने उन दोनों भाइयों को बडे मूर्खजान अनेक दुर्वचन कह अपमानकर उनका दावेदार जो सोमिल ब्राह्मण था उसको शीघ्रही पुरोहित का पद दिया, तब वह दोनो भाई मान भंग के दुःख कर हृदय विषे अत्यंत खेद खिन्न और नष्ट भई है आजीविका जिनकी वह अपने घर विषे इस प्रकार विचार करते भये, अहो हम मंद भागी हैं,

पिता पढाये तो भी पाप के उदय कर नहीं पढे कुमार्गमें लीन भये अति मूर्ख ही रहे, पुरुषों के ज्ञान रूप नेत्र बिना धर्मादिक की परीक्षा कहां और ज्ञान बिना लोक में मान्यता कैसे होय, और परलोक विषे सुख कैसे होय, जिन जीवों ने गुरु के निकट कल्याण का दायक समस्त तत्त्वों का प्रकाशक ज्ञान रूप नेत्र नहीं पाया वह पुरुष इस लोक विषे अंधे ही हैं जे दुर्बुद्धि तात मात गुरु जनादिक की शिक्षा और हितोपदेशादिक नहीं माने हैं उन पापी जीवों के दोनों लोक बिगडे हैं, ज्ञानाभ्यास कर निर्मल ज्ञान की उत्पत्ति होय है ज्ञानाभ्यास करके ही सत्पुरुषों को मोक्ष का लाभ होय है इस भांति विचार कर वह दोनों भाई अग्निभूत और वायुभूत श्रुतज्ञान के पढ़ने के अर्थ देशांतर जाने को शीघ्र ही उद्यमी भये, तब उनकी माता काश्यपी उनका विद्याभ्यास विषे अत्यंत आग्रह जान हितके अर्थ अपने पुत्रों को इस भांति कहती भई, कि हे पुत्रो राजगृह नगर विषे राजा सुबल के सुप्रभा नामा पटराणी है और हमारा भाई सूर्य मित्र पुरोहित है, कैसा है सूर्यमित्र, ज्ञान विज्ञान कर सहित है, और अति प्रवीण सकल पडितों विषे अग्रगामी है, और तुम्हारा मामा है, सो राजगृह विषे विद्यमान है, जो तुम दोनों के विद्याध्ययन विषे आग्रह है तो तुम दोनों शीघ्र ही जायकर सूर्यमित्र के समीप विद्याध्ययन करो, इस भांति माता के वचन प्रमाण कर वह दोनों ब्राह्मण विद्याके अर्थ कौशांवी नगरी से निकलकर अनुक्रम से राजगृह नगर में पहुंचे, वहां सूर्य मित्र द्विजोत्तम को मस्तक नवाय

नमस्कारकर इस भांति अमृत समान वचन कहते भये,हेमातुल,पूर्वं पिताने हठकर विद्या पढ़ाई,तो भी हम कुछ नहीं पढे, केवल घर विषे मूर्खही रहे, अब पिता के मरे पीछे राजा अति बलने हमारा पुरोहित पद सोमिल ब्राह्मण को दे दिया, और हम पद भ्रष्ट भये, और आजीविका से . भी रहित भये तब माता ने यहां तुम्हारे पास बहुत शास्त्र पढ़ने को हम को भेजे हैं और तुम हमारे हितकारी हो इस भांति जानकर तुम हमको शास्त्र पढाओ ताकि नष्ट भया जो पुरोहितपद सो शास्त्रअभ्याससे हमारे फिर होजायगा,यह बचन सुनकर बुद्धिवान सूर्यमित्र अपने चित्त विषे इसभांति विचार करता भया, अहो यह दोनों भाई यथेष्ट खान पानादि के लोभ से पिता के पास विद्या नहीं पढे.सो यदि मैं भी इन को यथेच्छ भोजन दूंगा तो यह दोनों शैलानी होजायेंगे, रंच मात्र भी विद्याध्ययन नहीं करेंगे, और विद्याध्ययन बिना इनके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी,इसभांति विचारकर सूर्यमित्र पुरोहित प्रकट कहता भया अहो द्विज पुत्र हो, मेरे तो कोई बहिन ही नहीं तब तुम दोनों विद्या हीन भाणजे कहां से भये, बहिन होवे तो भाणजेका होना संभव है सो बहिण बिना तुम भाणजे कहां से भये इस लिये तुम्हारी माता मेरी बहिन नहीं औरर तुम मेरे भाणजे नहीं पस यदि तुम अन्य ब्राह्मणोंके घर भिक्षा वृत्ति से भोजनकर यहां अध्ययन करो तो विद्या पढ़ा दूंगा सो तुम विद्या के अर्थी हो तो मेरा कहना मानो अन्यथा मैं विद्या नहीं पढ़ाऊंगा ऐसा कहने से वह दोनों भाई बोले हे, उपाध्याय सूर्यमित्र

तुमने जैसे कही वैसे ही करेंगे, इस भांति कह कर सूर्यमित्र के समीप बडे आदर से विद्याध्ययन करने का प्रारंभ करते भये, आलस्य रहित वह दोनों ब्राह्मण के पुत्र अनुक्रम से गिनती के दिनों में ही अनेक शास्त्रों को पढ़ कर महान् प्रवीण पंडित होगये अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर वह दानों भाई अपने घर आने को उद्यमी भये, तब सूर्यमित्र ने उनको वस्त्राभरण देय हर्ष कर ऐसे कहा, हे सामशर्म ब्राह्मण के नंदन अग्निभूत वायुभूत हो, मैं तुम्हारा निश्चय से हितकारी मामा हू सो अगर मैं यहां तुम को सोमशर्म की तरह यथेच्छ रमणीक खान पानादि देता तो तुम पूर्ववत कौतक विषयाशक्त भये थके विद्याध्ययन न करते मूर्ख ही रहजाते यह विचारकर मैंने विद्याध्ययनकी सिद्धि के अर्थ भिक्षा बृत्ति से तुम को दुखित किये, कैसा हूं मैं तुम दोनों का हित का बांछक हूं, यह बचन सूर्य मित्र के सुन कर अति हर्षाय मान होय बडा भाई अग्निभूत सूर्यमित्र की प्रशंसा करता भया कि हे वुद्धिवान सूर्य मित्र, तुम तो हमारे पिता समान दूजे हितकारी पिता हो तुमने ज्ञान दान से यहां हमरा पंथ हितकारी अनुष्ठान किया, और यह मनुष्य जन्म सफल किया और जीव ने का उपाय दिया, विद्यादान के सिवाय और दान श्रेष्ठ नहीं है और विद्यादान के दातार के सिवाय पृथ्वी विषे और कोई श्रेष्ठ दातार नहीं है, सो जो कृतघ्नी मूर्ख विद्या दान का दातार जो उपाध्याय उस का किया कल्याण का कारण उपकार नहीं माने हैं उन पापियों की समस्त विद्या पाप से नष्ट होय है, और

सूर्खपन की प्राप्ति होय है और परभव विषे नरकादिक गति होय है उसी समय दूसरा भाई दुराचारी वायुभूत सूर्यमित्र गुरु पर कोपायमान होय अपनी दुर्गति की करणहारी गुरु को बड़ी निंदा करता भया, रे सूर्य मित्र ! रे अधम ! रे दरिद्री ! तू चांडाल समान है, रे दुराचारी ! तैंने बलात्कारे घर घर भिक्षा मंगा मंगा कर हम को विद्या पढाई ॥

"अब कारण पाय ग्रन्थ करता आचार्य यहां कहे हैं, अहो भव्य जीवहो, देखो एक माता के उदर से उत्पन्न भये जो अग्निभूत वायुभूत दोनों भाई उन विषे महान अंतर है देखो अग्निभूत ने तो गुरु की प्रशंसा करी और वायुभूत ने गुरु की निंदा करी इससे यह जानिये है कि प्राणियों के कर्मों की गति विचित्र है" ॥

अब वह दोनों भाई राजगृह नगरसे कौशांबीपुर आयकर राजा अतिबल को आशीर्वाद देय अमृत समान बचन कह कर अपने शास्त्राभ्यासकी कुशलता प्रकाशी, सो नृपने आदर पूर्वक उन को अपना पुरोहित पद फिर दुबारा दिया सो यह दोनों भाई अपना पुरोहित पद अंगीकार कर बडी संपदा सहित आनंद से कौशांबी पुर विषे तिष्ठते भये, यह कथा तो यहां ही रही ॥

अथानन्तर—एक दिन राजगृह नगर का राजा सुबल स्नान के अवसर विषे अपनी देदीप्यमान मणियों कर जडित स्वर्ण मई मुद्रिका तैलमर्दन के अवसर मंद कांति होने के भय से सूर्यमित्र

को दी, तब सूर्यमित्र उस मुद्रिका को अंगुरी विषे धारण कर अपने घर आया। वहां ब्राह्मण के स्नान सन्ध्या तर्पणादि कर्म कर और भोजन कर फिर राज मंदिर जाय था, सो उस मुद्रिका को अंगुरी विषे नहीं देख कर अत्यंत खेद खिन्न भया, तब मुद्रिका के जानने निमित्त परमबोध नामा निमित्त ज्ञानी को बुलाय कर इस भांत पूछी अहो निमित्तज्ञानी हो रत्न जड़ित स्वर्ण मई मुद्रिका अंगुठी मेरे हाथ में से जाती रही सो कृपा करके यह बतलाइये कि पावेगी या नहीं। तब पुरोहित के प्रश्न से निमित्त ज्ञानी अपने निमित्त को विचार कर कहता भया। हे सूर्यमित्र ! तुझे उस मुद्रिका का अवश्य लाभ होगा, ऐसे कह कर निमित्त ज्ञानी तो अपने घर गया, परन्तु सूर्यमित्र पुरोहित शोक कर खेद खिन्न अपने महल में तिष्ठे था। उस समय उस नगर के बाहर उद्यान विषे चतुर्विध संघ सहित सुधर्म नामा आचार्य पधारे, यह सुन कर पुरोहित अपने चित्त विषे विचारी कि यह ज्ञानी मुनि ज्ञान नेत्र कर मुद्रिका को प्रत्यक्ष बता देंगे, इस से गुप्त रूप से एकाकी जाय कर इन को पूछूं, कैसे हैं सुधर्माचार्य ? अनेक भव्य जीवों को सम्बोधने वाले हैं, और इंद्र नरेन्द्र नागेन्द्रों कर सेवनीक हैं चरण युगल जिन के, तीन ज्ञानादि अनेक गुणों के धारक समस्त जीवों के हितकारी हैं और जगत कर वन्दनीक जगत विषे श्रेष्ठ समस्त जगत के स्तुति करने योग्य हैं, सो पुरोहित सूर्यमित्र पुण्य के उदय कर काल लब्धि के योग से दिन के अस्त होने के अवसर मुद्रिका के पूछने के निमित्त शीघ्र ही वन विषे

सुधर्माचार्य के समीप गया, वहां ज्ञानवृद्धि आदि अनेक गुणों के आकर और शरीरादिक विषे निर्मोही मोक्ष के साधन विषे लवलीन ऐसे योगीश्वर को देख कर लज्जा और अभिमान के योग से प्रश्नकर करने को असमर्थ और कार्यका अर्थी ऐसा जो पुरोहित सो कार्य्य की सिद्धि के अर्थ मुनि के चहुंओर भ्रमण करे। सो उस को वह परोपकारी योगीश्वर अवधि ज्ञान के योग कर अत्यंत निकट भव्य जान इस भांति अमृतमय वचन कहते भये। कि हे सूर्यमित्र! नृप की रमणीक मुद्रिका को कर की अंगुरी से गेर कर चितातुर भया थका तू यहां मेरे पास आया है, तब सूर्यमित्र अपने मनमें यह विचारता भया कि जो समस्त कार्य्य मेरे चित्त विषे थे सो सारे बिना कहे मुनि ने बतला दिये तब सूर्यमित्र अपने हृदय विषे बहुत आश्चर्य को पायकर शीश नवाय मुनि को नमस्कार कर ऐसे पूछता भया। हे ज्ञानिन् जहां मुद्रिका पड़ी होय सो मुझे कहो, तब वह ज्ञानरूप नेत्र के धारी सुधर्माचार्य इस भांति कहते भये। हे धीमन (बुद्धिमान)! तेरे महल के पिछाड़ी बाग के मध्य सरोवर की पाल पर खड़ा रह कर तू सूर्य को अर्घ देवे था तब तेरे कर की अगुरी से निकस कर मुद्रिका सरोवर के जल में कमल की कर्णिका विषे शीघ्र ही पड़ी, अवार अदृश्य विद्यमान है, इस से हे भद्र मुद्रिका संबंधी शोक छोड़, और मेरे बचन विषे निश्चय कर इस भांति मुनि के बचन सुन कर जहां मुद्रिका बताई थी, वहां जाय तैसे ही मुद्रिका कर्णिका विषे पड़ी देख मुद्रिका को ग्रहणकर हर्षायमान होय राजा की भेटकर विस्मय

है, ज्ञान नेत्र से ही समस्त वस्तु यथावत जानी जाय हैं, और ज्ञान का फल समस्त कर्मों का अत्यंत क्षय रूप मोक्ष है, और मैं भी ज्ञानही विषे निरंतरमन लगाऊं हूं इस लिये हे ज्ञान तू मुझे ज्ञानी कर॥

इति श्री सकल कीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ उसकी देश भाषामय वचनिका विषेसूर्यमित्र पुरोहित के दीक्षा ग्रहण का वर्णन जिस में हैं ऐसा चौथा सर्ग समाप्त भया॥



५ पांचवां अधिकार

(नागश्री के भवों का वर्णन)

चौपाई—बाहिरभ्यंतर परिग्रह छार। गुणसंयुत धारी अविकार।
सकल शिरोमणि तिहु जग बंद। प्रणमूं अध्यापक गुणवृन्द।

अथानंतर—यह सूर्यमित्र मुनि सुधर्माचार्य सहित ग्राम, खेट, पुर, अटवी आदि अनेक देशों में विहार करते अनुक्रम से इस चंपापुरी में आये, सो यह पुरी भगवान् वासपूज्य द्वादशम तीर्थंकर की निर्वाण भूमि है, इसके तीन प्रदक्षिणा देय स्तुति कर नमस्कार किया तब यहां निर्वाण भक्ति कर

सुधर्माचार्य के समीप गया, वहां ज्ञानबृद्धि आदि अनेक गुणों के आकर और शरीरादिक विषे निर्मोही मोक्ष के साधन विषे लवलीन ऐसे योगीश्वर को देख कर लज्जा और अभिमान के योग से प्रश्नकर करने को असमर्थ और कार्यका अर्थी ऐसा जो पुरोहित सो कार्य्य की सिद्धि के अर्थ मुनि के चहुंओर भ्रमण करे। सो उस को वह परोपकारी योगीश्वर अवधि ज्ञान के योग कर अत्यंत निकट भव्य जान इस भांति अमृतमय बचन कहते भये। कि हे सूर्यमित्र ! नृप की रमणीक मुद्रिका को कर की अंगुरी से गेर कर चिंतातुर भया थका तू यहां मेरे पास आया है, तब सूर्यमित्र अपने मनमें यह विचारता भया कि जो समस्त कार्य्य मेरे चित्त विषे थे सो सारे बिना कहे मुनि ने बतला दिये तब सूर्यमित्र अपने हृदय विषे बहुत आश्चर्य को पायकर शीश नवाय मुनि को नमस्कार कर ऐसे पूछता भया। हे ज्ञानिन् जहां मुद्रिका पड़ी होय सो मुझे कहो, तब वह ज्ञानरूप नेत्र के धारी सुधर्माचार्य इस भांति कहते भये। हे धीमन (बुद्धिमान)! तेरे महल के पिछाड़ी बाग के मध्य सरोवर की पाल पर खड़ा रह कर तू सूर्य को अर्घ देवे था तब तेरे कर की अंगुरी से निकस कर मुद्रिका सरोवर के जल में कमल की कर्णिका विषे शीघ्र ही पड़ी, अवार अदृश्य विद्यमान है, इस से हे भद्र मुद्रिका संबंधी शोक छोड़, और मेरे बचन विषे निश्चय कर इस भांति मुनि के बचन सुन कर जहां मुद्रिका बताई थी, वहां जाय, तैसे ही मुद्रिका कर्णिका विषे पड़ी देख मुद्रिका को ग्रहणकर हर्षायमान होय राजा को भेटकर विस्मय

को प्राप्त भया। सूर्यमित्र पुरोहित चित्त विषे इसभांति विचारता भया अहो यह मुनिराज प्रत्यक्ष सर्व के ज्ञाता ज्ञानी पुरुषों के मध्य अनुपम महा ज्ञानी हैं, और भूमि विषे समस्त निमित्त ज्ञानियों के मध्य सारभूत यह ही निमित्त ज्ञानी हैं, इस कारण से इस मुनीन्द्र का आराधन कर जिस निमित्त ज्ञान से प्रत्यक्ष मुद्रिका बताई तिस निमित्त ज्ञान की प्रार्थना करूं, उस निमित्त ज्ञान कर सत्पुरुषों और पंडितों के मध्य मेरी बड़ी विख्यातता होयगी, और महान् ऐश्वर्य का लाभ होयगा, लोक विषे मानता होयगी, और परम पद का लाभ होयगा। इस भांति विचार कर अति लोभी सूर्यमित्र सर्व से गुप्त रूप निमित्त ज्ञान सीखने को सुधर्माचार्य के समीप गया, वहां योगीराज को हाथ जोड़ सिर निवाय प्रणाम कर भले बचन से प्रार्थना करी। हे भगवन्! हे कृपानाथ !! प्रत्यक्ष अर्थ को प्रकाशिनी अति दुर्लभ यह विद्या मुझे देवो, तब वह सुधर्माचार्य अवधिज्ञानी सूर्यमित्र के हित के इच्छक सूर्यमित्र को बोले। हे भद्र ! यह प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी परम विद्या निर्ग्रंथ ज्ञानी मुनि बिना और के प्रकट परिणित को नहीं प्राप्त होय है। और पुरुष के सिद्ध नहीं,होय,सो तू भी विद्या का अर्थी है तो मुझ समान निर्ग्रंथ होजा। यह बचन सुधर्माचार्य के सुन कर सूर्यमित्र अपने घर जाय समस्त परिवार को बुला निर्ग्रंथ भेष की सिद्धि के अर्थ इस, प्रकार प्रार्थना करता भया। अहो सज्जन पुरुषो! सुधर्माचार्य के निकट प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी प्रत्यक्ष चमत्कारिणी महा विद्या है, परन्तु निर्ग्रंथ भेष बिना

यह विद्या हम को देवे नहीं इस से विद्या के लाभ के अर्थ निग्रंथ होकर छल से विद्या को ले अपना कार्य कर शीघ्र ही मैं वापिस आऊंगा, यहां मेरे वियोग से तुम को चमात्र भी शोक करना योग्य नहीं है, तब वह सज्जन विद्या के लोभ से सूर्यमित्र को बोले। हे सूर्यमित्र ! जो तुम ने विचारी सोई नीकी है, परन्तु विद्या का लाभ भये पीछे अटकियो मत, तुरत ही आजाइयो ॥

इस भांति विचारकर सूर्यमित्र पुरोहित तुरत ही मुनि के समाप जाय सिर नवाय प्रणाम कर केवल विद्या के लाभ के निमित्त इसभांति कहता भया। हे भगवन्! मेरे विद्यालाभ की सिद्धि के अर्थ निग्रंथ मुनि का भेष आदि जो कर्तव्य हो सो करके मुझे शीघ्रही प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी कल्याण रूपणी विद्या देवो। तब उन सुधर्माचार्य भावीकाल संबंधी समस्त पदार्थों के ज्ञाता ने, वाह्याभ्यंतर चौबीस प्रकार परिग्रह का त्याग कराय सूर्यमित्र ब्राह्मण को सुरशिव संपदा के कारण सारभूत अठाईस मूल गुण सहित भगवती दीक्षा दीनी, कैसी है दीक्षा ? तीन जगत के जीवों कर बंदनीक है, और तीन लोक के सुख की करणहारी है, उस ही समय वह सूर्यमित्र पुरोहित सुधर्माचार्य को नमस्कार कर यह प्रार्थना करता भया। हे भगवन् ! कृपा करके अब मुझे प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी विद्या देवो। तब सुधर्माचार्य बोले। हे धीमन क्रिया ! कलाप आदि अनुयोगों के अभ्यास किये बिना वह विद्या सत पुरुषों को भी सिद्ध नहीं होय है, यह बचन सुन कर सुबुद्धि सूर्यमित्र पुरोहित ने बड़े उद्यम कर

गुरु के पास चारों अनुयोग पढ़ना प्रारंभ किया, वहां प्रथम ही परम पुनीत जो त्रेसठ शलाका पुरुषोंके पूर्व भव और सुख,आयु,कायविभूति आदि का प्ररूपक और धर्मका कारण ऐसा जो प्रथमानुयोग उसको पुण्य पाप के फल की प्रकटता के अर्थ पढ़ता भया, और लोक अलोक के विभाग को तथा लोकालोक के आकार विशेष का प्ररूपक और सात नरक आदि चारों गति के दुःखादिक का प्ररूपक और स्वर्गादिक के सुख संपदा का प्ररूपक ऐसा जो सकल वस्तु तत्व के दिखाने को दीपक समान करुणानुयोग सिद्धांत सो गुरु के मुख से अध्ययन किया, फिर मुनि श्रावकों की क्रिया, आचार गुण और जघन्य मध्यम उत्कृष्ट श्रावक के तीन भेद, तथा महाव्रत, अणुव्रत, अठारह हजार शील के भेद चौरासी लाख उत्तर गुण तथा तीन गुण व्रतचार शिक्षा व्रतरूप श्रावक के सात शील भेद और इन के स्वर्ग मोक्षादिक फल आदि जिस विषे निरूपण किये ऐसा जो सिद्धांत सो चरणानुयोग श्रीगुरु के बचन कर नीके अभ्यास किया, फिर जिस विषे षट् द्रव्य, सप्ततत्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय आदि समस्त पदार्थों का संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित सांचे लक्षण और जैन दर्शन कहिये सम्यक्दर्शन अथवा जिनमत का सांचा स्वरूप तथा एकांत, विपरीत, विनय, संशय, अज्ञान रूप पंच भेद मिथ्यात का निराकरण और सांचे झूठे मत के देव, गुरु धर्मादिक की परीक्षा ही होय ऐसा परमोत्तम द्रव्यानुयोग श्रीगुरु के पास बहुत नीके अभ्यास किया, सो सूर्यमित्र मुनि द्रव्यानुयोग

के अभ्यास करने से उत्तम सम्यग्दृष्टि होकर हेय जो तजने योग्य और उपादेय जो ग्रहण करने योग्य जे अन्यमत कर कहे और जिनमत कर कहे पच्चीस सोलह और सात तत्त्व नव पदार्थ जिन के शुभा शुभ लक्षण धर्म अधर्म के भेद और जिनमत तथा अन्यमत के भेदों को भले प्रकार जान कर महा बुद्धिवान निर्मल चित्त विषे इस भांत प्रकट विचार करता भया। अहो, श्रीजिनेन्द्र देव के मुख से प्रकट भया। और स्वर्ग मुक्ति के सुख का कारण ऐसा जिनमत ही यह सारभूत जगत पूज्य सांचा दीखे है, और अन्य मतियों कर कल्पना किये बहुत निंदनीक जे अन्य मत वह हालाहल समान अनेक जन्म विषे प्राणों के घातक हैं, अब मुझ को नरक निगोद के कारण भाषे हैं और सर्वज्ञ देव कर कहे सम्यक्ज्ञानके कारणभूत यह जीवादि समस्त पदार्थ मुझको सार सहित भासे हैं, और कुमार्ग गामियों कर कहे कल्पित यह खोटे तत्त्व झूठे महान पाप के कारण मैंने अज्ञान से वृथा ही अभ्यास किये मति श्रुति है नाम जिनके ऐसे परोक्ष दो ज्ञान जगत के हितकारी केवल ज्ञानवत लोकालोक संबंधी समस्त पदार्थों को परोक्ष प्रकाशे हैं, और यहां ही जिसकर समस्त मूर्तीक द्रव्य और जीवोंके भवांतर प्रत्यक्ष पणे साक्षात् देखिये हैं, ऐसा अवधि ज्ञान है, तिस देशावधि, परमावधि, सर्वावधि कर तीन भेद हैं, उन विषे देशावधि ज्ञान तो चारों ही गति विषे सम्यग्दृष्टि जीवों के भव प्रत्यय अथवा अवधि ज्ञाना वरण कर्म के क्षयोपशम से उपजे है, और परमावधि सर्वावधि ज्ञान तद्भवमोक्षगामी भावलिंगी

मुनिजनोंही के उत्पन्न होय है, अन्य जीवों के नहीं होय हैं और रूपी द्रव्यों के सूक्ष्म तत्त्व के प्रत्यक्ष दिखाने को दीपक समान मनः पर्ययज्ञान भावलिंगी निर्ग्रंथ मुनीश्वरों के ही होय है और द्रव्यलिंगी मुनियों के कुमति कुश्रुत विभंग ज्ञान होय है सम्यग्ज्ञान कभी भी नहीं होय है और चार घातिया कर्मों के नाश से केवल ज्ञान प्रकट होय है, कैसा है केवल ज्ञान त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जाने है, यह केवल ज्ञान त्रिलोक दीपक आत्मा का निज स्वरूप है, यह पांच भेद सम्यक्ज्ञान समस्त पदार्थों के प्रकाशक हैं, इन ज्ञानों के देने को लोक विषे कोई भी किसी को समर्थ नहीं हैं, ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से अथवा क्षय से योगीश्वरों के यह पांच ज्ञान स्वयमेव प्रकट होय हैं तहां चार ज्ञान तो ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होय हैं, और केवलज्ञान चार घातिया कर्मों के क्षय स होय है, यह मैंने आत्म हित के अर्थ भला उत्तम कार्य किया जो अवधि ज्ञान के लोभ कर महान संयम ग्रहण किया, जैसे कंद मूल को हेरते हेरते निधि का लाभ होय तैसे ख्याति पूजा के लोभ से मेरे दीक्षारूप निधिका लाभ भया,और यह सुधर्माचार्य जो समस्त जीवों के हित के वांछक हैं ज्ञान की आज्ञा रूप भला उपाय कर मुझ को भगवती दीक्षा दई, कैसी है भगवती दीक्षा समस्त जगत् की हितकारिणी है, इस दीक्षा कर आज मैं कृत्य कृत्य हूं, और मोक्षमार्गी हूं और समस्त पापों कर रहित पवित्र मैं आज तीन जगत कर पूज्य भया इस संसार विषे अनादि काल से दुर्लभ ऐसी यह

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र की एकता रूप जो बोधि सो महान् उदय कर जिन शासन विषे मैंने पाई, हमारे भुक्ति मुक्ति के दायक निर्दोष अर्हंत देव हैं, अनन्त गुणों का आकर और तीन जगत का नाथ ऐसा अर्हंत देव मैंने काल लब्धि से पाया है और दुस्तर संसार समुद्र के तिरवे को अथवा भव्य जीवों को तारने को समर्थ ऐसा निर्ग्रंथ गुरु मैंने बडे पुण्य के उदय कर पाया है कैसा है निर्ग्रंथ गुरु ? धर्म रूप है बुद्धि जिसकी इस संसार विषे मिथ्यामार्ग में तिष्ठते थके मेरे इतने दिन वृथा ही भये, और स्नान संध्या तर्पणादि विषे मेरे केवल संक्लेश ही भया ये जीव मिथ्यादृष्टि जिन धर्म रे पराङ्मुख देव कर ठगे थके धर्म के अर्थ कुमार्ग विषे वृथा ही खेद खिन्न होय हैं इससे तीन लोक विषे सारभूत ऐसा जिन शासन मैंने अति दुर्लभ पाया सो मैं आज महान पुण्य वान भया और आज मैं धन्य भया और आजही मैं मोक्ष मार्ग विषे गमन करण हारा भया, जैसे जोतिषी देवों विषे श्रेष्ठ सूर्य है और धातुओं के मध्य स्वर्ण की खानि श्रेष्ठ है और पाषाणों विषे चिंतामणि परम श्रेष्ठ है, वृक्षों में कल्प वृक्ष, स्त्री पुरुषों के मध्य शीलवान स्त्री पुरुष, धनवान पुरुषों में दातार, तपस्वियों में जितेंद्री पुरुष, और पंडितों में ज्ञानी जीव, उत्तम आचरण के धारी श्रेष्ठ हैं तैसे समस्त धर्मों के मध्य श्रीजिनेंद्र कर भाषित दया मई धर्म परमश्रेष्ठ है, और समस्त मार्गों में श्रीजिनेंद्र कर भाषित निर्ग्रंथ भेष रूप जिनेंद्रमार्ग ही उत्तम श्रेष्ठ है, जसे गऊ के सींग से दूध और, सर्प के मुख से अमृत

और अनाचार (कुकर्म) से यश, मान से महंत पणा कदाचित् भी नहीं, पाइये है, तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्मके सेवनसे कुमार्ग विषे प्रवर्तने से और खोटे शास्त्रों के अध्ययनसे श्रेय कहिये कल्याण और शुभ कहिये पुण्यकर्म और शिव कहिये मोक्ष कदाकाल भी नही पाइये ॥

इत्यादिक चिंतवन करने से सूर्यमित्र मुनिराज अत्यंत दृढ़ वैराग्य को पायकर और कर-तल की रेखा समान समस्त हेयोपादेय वस्तुओं को जान कर और सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से बारह प्रकार संयम विषे लवलीन होय कर जिन शासन विषे कहे जे व्रत और तप उनके पालने को उद्यमी भये, इस भांति ज्ञानाभ्यास कर सूर्यमित्र मुनिराज इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर पूजनीय भये, कैसे हैं, सूर्यमित्र मुनिराज ? सम्यग् ज्ञानादि, अनेक गुणों की है, निरंतर बढवारी जिनके, और तीन लोक विषे विख्यात है कीर्ति जिन की और सम्यग् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र की एकता रूप जो मोक्ष मार्ग उस विषे अतिचार रहित है गमन जिनका ऐसे परमोत्कृष्ट भये ॥

इस लिये हे भव्य जीव हो, तुम भी ऐसे जानकर बड़े आदर से सकल शास्त्रों का अध्ययन करो, समस्त पापों का विनाश करनहारा और पुण्यका निवास यह सम्यग्ज्ञानहै, और ज्ञानवानपुरुषही ज्ञान का आश्रय करे हैं और शिवरमणीके चरणारविन्द ज्ञान करही अवलोकन करिये है इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्र, ज्ञान ही के अर्थ शीश नवाय नमस्कार करे हैं, समस्त जीवों के ज्ञान को टार अनुपम दूजा नेत्र नहीं

है, ज्ञान नेत्र से ही समस्त वस्तु यथावत जानी जाय हैं, और ज्ञान का फल समस्त कर्मों का अत्यंत क्षय रूप मोक्ष है, और मैं भी ज्ञानही विषे निरंतरमन लगाऊं हूं इस लिये हे ज्ञान तू मुझे ज्ञानी कर॥

इति श्री सकल कीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ उसकी देश भाषामय वचनिका विषेसूर्यमित्र पुरोहित के दीक्षा ग्रहण का वर्णन जिस में हैं ऐसा चौथा सर्ग समाप्त भया॥



५पांचवां अधिकार

(नागश्री के भवों का वर्णन)

चौपाई—बाहिरभ्यंतर परिग्रह छार। गुणसंयुत धारी अविकार।
सकल शिरोमणि तिहु जग बंद। पणमूं अध्यापक गुणवृन्द।

अथानंतर—यह सूर्यमित्र मुनि सुधर्माचार्य सहित ग्राम, खेट, पुर, अटवी आदि अनेक देशों में विहार करते अनुक्रम से इस चंपापुरी में आये, सो यह पुरी भगवान् वासपूज्य द्वादशम तीर्थंकर की निर्वाण भूमि है, इसके तीन प्रदक्षिणा देय स्तुति कर नमस्कार किया तब यहां निर्वाण भक्ति कर

सहित सुधर्माचार्य के साथ मोक्ष के अर्थ और मोक्ष को प्राप्त भये जो सिद्ध परमेष्ठी उनके गुणग्राम की भावना के अर्थ प्रदक्षिणा सहित भक्ति करने के अवसर अंतरंग विषे परिणामों की विशुद्धता निमित्त अज्ञान रूप तिमिर का घातक और त्रिलोक विषे समस्त मूर्तीक द्रव्यों का प्रकाशक जगत विषे उत्तम ऐसा अवधिज्ञान सूर्यमित्र महामुनिके स्वयमेव प्रकट भया ॥ अहो भव्य जीव हो, निर्वाञ्छिक शांत परिणामी वीतरागी मुनियों के अवधिज्ञान तप के प्रभाव कर अनेक ऋद्धि स्वयमेव प्रकट होय है, इस में कुछ भी संशय नहीं ज्ञान विज्ञान कर परिपूर्ण अनेक गणों के सागर रत्नत्रय कर विशुद्ध है आत्मा जिनका, सकल संघ के भार विषे समर्थ, महातपस्वी, महाध्यानी अतिचार रहित पंच महाव्रत के धारक पांचों इन्द्रियों के विजई महाशीलवान योगियों में प्रधान शांत है परिणाम जिनके, समस्त जीवों के हित के वांछक सांसारिक सुख विषे वांछा रहित ऐसे सूर्यमित्र मुनिराज बड़े गुणों कर अनुक्रम से सकल शिष्यों के मध्य प्रधान शिष्य भये, तब पूर्वोक्त प्रकार गुणोंकर सहित सकल संघ विषे प्रधान सूर्यमित्र को अवलोकनकर और संघ के भार विषे समर्थ जान, सकल संघ की साख कर विधि पूर्वक सूर्यमित्र मुनि को आचार्य पद दे कर गुरु सुधर्माचार्य तो शिव सुख की सिद्धि के अर्थ आप एकाविहारी भये, सुधर्माचार्य एकाकी उग्रोग्र तप करते और ईर्यापथ कर अनेक देश पुर ग्रामादि विषे विहार करते, ध्यानाध्ययन विषे आसक्त, प्रमाद रहित, जितेन्द्रिय, मौन व्रत के

धारक महा धीर वीर अनुक्रम से वाणारसी आये, वहां वाणारसी के बाहर भूमि भाग विषे प्रासुक निर्जन्तु शुभ स्थान में आत्म ध्यान का अवलंबन कर सुधर्माचार्य मुनि योग धार तिष्टे, वहां आत्म ध्यान के योग कर शिव मंदिर की सीढ़ी समान क्षपक श्रेणी विषे आरूढ होय निर्मल शांत परणामी योगराज चार घातिया कर्मों को निर्मूल कर नव केवल लब्धि सहित केवल ज्ञान को प्राप्त भये, कैसा है केवल ज्ञान ? शिवरमणी के मुख अवलोकन को दर्पण समान है, तब वह केवली भगवान इन्द्रादिक देवोंकर केवलज्ञान कल्याणककी पूजाको पाय वहां ही अन्तिम शुक्ल ध्यानके बलसे अव शेष चार घातिया कर्मों का निपात कर देह को त्याग निर्वाण को प्राप्त भये। कैसा है निर्वाण ? लोक शिखर पर स्थिरीभूत अनंत गुणों का सागर है, और अवनाशी अनुपम सुखों की खानि है ॥

अथानंतर–वह सूर्यमित्र मुनिराज सकल संघ के नायक धर्म की प्रभावना करते आत्मीक स्वाधीन अविनाशी सुख के अर्थ भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते पृथ्वी तल विषे विहार करते ईर्यापथ के पालक एक दिन भोजन के अर्थ कौशांबीपुरी विषे प्रवेश करते भये। वहां उन का भाणजा अग्नि भूत वायुभूत का बड़ा भाई सोमशर्म ब्राह्मणका पुत्र धर्मात्मा, परम निर्ग्रंथ अपने गुरु सूर्यमित्र मुनि-राज को दुर्लभ निधि समान देखअत्यंत हर्षायमान होय कहता भया॥ हेभगवन्!यहां तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, ऐसे तीन वार उच्चारण कर श्रीमुनि को पड़गाहता भया। दातार के सप्त गुण सहित

नवधाभक्ति कर सरस,मधुर,प्रासुक,ज्ञान ध्यानादिक की बृद्धिका दायक आहार दान अपने उपकार के अर्थ सूर्यमित्र मुनिराजको भाव सहित दिया,तब वह मुनिराज वीतराग परिणामोंसे भोजन कर आरम ध्यान के अर्थ उलटे बन को चलने लगे, तब उस समय नमस्कार कर अग्निभूत ने ऐसे बचन कहे, हे भगवन् ! मेरा छोटा भाई वायुभूत क्रोध मायादि अनाचार कर और तुम सरीखे महंत पुरुषों की निंदा कर निरंतर पाप का उपार्जन करे है, इस लिये हे भगवन् ! उस दुराचारी के संबोधवे के अर्थ उस के घर पधारो, क्योंकि तीन जगत के जीवों को संबोधवे को आप ही समर्थ हो, यह वचन सुन कर मुनिराज बोले । हे अग्निभूत ! उस वायुभूत के निकट कभी भी जाना योग्य नही है, क्योंकि वायुभूत स्वभाव ही से रुद्र परिणामी है, और हमारे दर्शन मात्र से निंदादिक कर दुख दाई है महान पाप को अंगीकार करेगा, उस पाप कर उस का जीव चिरकाल दुर्गति विषे भ्रमण करेगा, यह बचन मुनि के सुन फिर अग्निभूत बोला । हे स्वामिन् ! मेरे ही आग्रह से आप पधारो आप के संबोधवे से उस का कुछ होनहार है सो होवेगा, इस भांति अग्निभूत के आग्रह से त्रिलोकवर्ती जीवोंके हित विषे उद्यमी और समस्त जीवों पर है समभाव जिन के,ऐसे सूर्यमित्र मुनिराज अग्निभूत की साथ वायु भूत के घर गये, वह पापी दुराचारी वायुभूत मुनि को देख कर सूर्यमित्र जान पाप के उदय से कोप थकी कटुक दुर्वचन कर मुनि की ऐसे निंदा करता भया । रे सूर्यमित्र ! पहले तू कृपण, दुष्ट, महान

कुटिल परिणामी था, और हम दोनों भाइयों को भिक्षा के अर्थ घर घर भ्रमावे था, सो अब तू पाप के उदयकर नग्न भया थका घर घर भ्रमण करे है, इत्यादिक कटुक दुर्वचन कहकर महामुनि की निंदा कर उस वायुभूत ने तिर्यंच गति का कारण निंद्य अशुभ पाप कर्म का बंध किया, सो जिसके जैसा शुभाशुभ गति होनहार है उसके वैसी ही सामग्री वहां मिल जाय है, उस के निवारण करने को कोई भी समर्थ नहीं है, वह योगी सूर्यमित्र मुनिराज उत्तमक्षमादिक गुणों कर सौम्यभाव की वृद्धि के अर्थ वायुभूत कृत आक्रोश परीषह को सहकर वहां से वनांतर को गये, तब धर्मात्मा अग्निभूत मुनि की निंदा सुन कर अत्यंत दुखी होय चित्त विषे संवेग को पाय कर समस्त विषयों विषे ऐसे चिंतवन करता भया। अहो यह अत्यन्त पापी, दुराचारी, पापबुद्धि, वायुभूत पाप कर्म के उदय से अपने दुर्गति की देनहारी इस सूर्यमित्र मुनि की निन्दा वृथा ही करी, अथवा इस वायुभूत का इस में क्या दोष है में पापी पापात्मा ही जो नहीं आवते भी मुनि को हठ से वायुभूत के घर लाया, कैसे हैं मुनि ? भावीकाल संबंधी समस्त शुभाशुभ होनहार के ज्ञाता हैं, इससे मुनि की निंदा कर उत्पन्न भया जो पाप कर्म का बंध सो निश्चय कर मेरे ही भया। क्योंकि कृत, कारित, अनुमोदना कर पाप कर्म का बंध होय है, सो इस पाप की शुद्धि ताके अर्थ बंदिग्रह समान घर का और अपने शत्रु समान बंधुजनों को त्याग कर संयम ग्रहण करूं मेरे उस भाई कर कहा कार्य है, जो वीतरागी गुरुओं

की निंदा करे, और इस घर कर अथवा कुटुंब कर कहा प्रयोजन सधेगा जिन कर नाना प्रकार के पाप कर्मों का आश्रय होय है, अर्हंतदेव, निर्ग्रंथ गुरु और अर्हंत कर कहे, जो शास्त्र इन तीनों की भक्ति समान स्वर्ग मुक्ति का दायक संसार विषे और धर्म नहीं है और इन तीनों की निंदा समान नरक निगोद का दायक और दूसरा महान पाप नहीं है ॥

इस भांति विचार कर पुण्यात्मा अग्निभूत चित्त विषे दुगुणे वैराग्य को पाय कर संसार देह भोगों विषे उदास होय ग्रहवास का परित्याग कर बाह्याभ्यंतर चौबीस प्रकार के परिग्रह को छोड मन, बचन, कायकर, देवों को भी दुर्लभ ऐसा संयम, कर्मों की हानि के अर्थ पण्य के उदय से अंगीकार करता भया। अहो वह पाप भी यहां भला है, जिस पाप कर ज्ञानवान पुरुष संवेग को और मोह रूप बैरी के घातक महान तप संयम को प्राप्त होय ॥

अब अग्निभूत की स्त्री सोमदत्ता इस वृत्तांत को जान कर तुरत ही भर्तार के वियोग संबंधी शोक से मलिन मुख होय वायुभूत के समीप जाय शोक की शांति के अर्थ ऐसे कहती भई। हे वायुभूत! तैंने दुष्ट परिणाम से महामुनि की निंदा करी, तिस कर तेरा भाई अग्निभूत वैराग्य पाय कर मुनि भया। सो जब तक कोई न जाने तब तक अपन दोनों चल कर उसको समझाय कर ले आवें इस कार्य की सिद्धि के अर्थ तू मेरे साथ चल और जो हमारे चलने में दीर्घ काल लगेगा तो फिर तेरे भाई को

लाने को हम तुम दोनों समर्थ नहीं होंगे, इस भांति सोमदत्ता के बचन से महा क्रोधायमान होय कर क्रोधांध वायुभूत कोपकर अग्निभूत की स्त्री जो सोमदत्ता माता समान बडी भावज उसके मुख पर लात मारी, तब वायुभूत की लात की ताडना से सोमदत्ता स्वपर घातक क्रोध को पाय कर निंद्यकर्म का कारण जगत निंद्य इस भांति निदान करती भई, अरे दुराचारी,यहां तो मैं अबला कहिये निर्बल हूं, तेरे मुख पर उलटी लात देने को समर्थ नहीं, तथापि जन्मांतर विषे जैसी तैसी हूंगी तहां तेरी इस ही लात का स्तोक स्तोक खंडन करूंगी, भखूंगी ॥

अहो यह बडी आश्चर्य की वार्ता है, जो क्रोधकर आंधे दुराचारी पापी जीव हैं वह अपने और परके हिताहित को नहीं देखे हैं,ऐसे जानकर धर्म बुद्धि ज्ञानी पुरुषों को दोनों लोक का घातक और धर्म शर्म का विनाशक ऐसा शत्रु समान क्रोध,जो उसको क्षमारूप वाणों कर हनिवे योग्य है,॥

अब वायुभूत के मुनिराजकी निंदा करने से सातवें दिन अनन्त पाप कर्म के उदय से सर्व शरीर विषे महाघोर दुखों का एक निधान उदंवरजाति का महान कोढ भया जिस से महान व्याधि घोर दुखों का भोग आर्तध्यान प्रकट भया आचार्य कहे हैं, अहो जीवहो, महान पाप कर्म के उपार्जन कर पापी जीव इस ही भव विषे तत्काल नाना प्रकार के क्लेशों कर दुख को पावे हैं, और परभव विषे जो नरकादि संबंधी दुःख भोगवे हैं तिनकी कथा कहने को कोई भी समर्थ नहीं है ॥

अब वह वायुभूत उदंबर कोढ़ आदि व्याधि कर घोर दुःख को भोग आर्तध्यान कर प्राण छोड़ पाप के उदय से उस ही कोशांवी पुरी विषे गधी भई अहो भव्य जीव हो परम पवित्र, परमपूज्य अर्हंत देव, निर्ग्रंथ गुरु दया भई धर्म के निंदक जीवों के पाप के उदय से इस ही भव विषे भूत, भावी वर्तमान पुण्य कर्म का और सुख का नाश होय है,इस भांति जान कर भव्य जीवों को प्राणों का अंत होते भी अर्हंत देव निर्ग्रंथ गुरु, दया मई धर्म और अर्हंत कर कहे शास्त्र और धर्मात्मा श्रावक इन की निंदा का त्याग करना योग्य है ॥

अब वह गधी पापके उदय कर अति दुःखी नाना प्रकार के सैंकडों क्लेशों के दुःख और क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण संबंधी तीव्र वेदना और लोकों विषे पैंड पैंड पर काष्ठ पाषाण की ताडना आदि अनेक प्रकार के दुखों को भोग अल्प आयु के अंत मरण कर वहां ही कौसांबी विषे महा दुखी सूरा भई, सो वह सूरी स्वामी रहित जिसका कोई रक्षक नहीं, पराधीन, क्षुधा, तृषा आदि तथा लोगों की ताड़ना आदि अनेक प्रकार दुख को भोग कर बडे कष्ट से प्राणों का त्याग कर पाप के उदय से इस ही चंपापुरी विषे चांडाल के वाडे में कूकरी (कुत्ती) भई,कैसी है कूकरी ? महान घोर दुःख कर व्याकुल है और विकराल कहिये महा भयंकर है, मुख जिसका अत्यत क्रूर हैं परिणाम जिस के सो कूकरी पाप के उदय कर उस ही चांडाल के वाड़े में क्षुधा, तृषा,शीत, उष्ण संबन्धी नाना प्रकार के

दुखों को भोगती लोगों की ताड़ना कर अति कष्टसे प्राणछोड़ वहांही कौसांबीनामा चांडालीके जात्यंधा नामा चांडाली (चुहड़ी) पुत्री भई, कैसी है चांडाली? पापके उदय से दुःख कर परिपूर्ण है, शरीर जिसका और जन्महीसे आंधी और अत्यंत दुर्गंध भया है शरीर जिसका महा विकराल कुरूपकी धरनहारी भई ॥

अथानंतर–उस अवसर विषे धर्म ध्यान में सावधान सूर्यमित्र अग्नि भूत दोनों मुनिराज पृथ्वी विषे विहार करते जहां वायुभूत का जीव जात्यंधा चांडाली भई थी वहां आये, सो सूर्यमित्र मुनिराज तो उपवासे थे सो वह तो बन विषे तिष्ठे, और अग्निभूत मुनि आहार के अर्थ उस नगरी में गये सो वहां जाते हुये मार्ग में बहुत वृक्षों के वीच जामूण के दरखत के तले वैठी दुःख कर पीडित उस चांडाली को देख उसके दुःखकर मुनि दुःखित भये और उस ही समय भवांतर के स्नेह से शोक कर अग्निभूतमुनि के नेत्र में वलात्कार अश्रुपात भर आये तब वहां से उलटे शीघ्र ही जाय अपने गुरु को नमस्कार कर इस भांति पूछते भये, हे महाज्ञानी एक चांडाली के दर्शन मात्र से मेरे नेत्रों विषे अश्रुपात भर आये, और मेरे अतिशय कर दुःख भया, सो इस शोकादि दुःख का कारण क्या है सो तुम कहो, तब सूर्यमित्र गुरु ऐसे कहते भये, हे धीमन, तेरा भाई कुबुद्धी वायुभूत हमारी निंदा संबंधी पापके उदय कर निरंतर दुख भोग लोक निंद्य तिर्यंच गति विषे भ्रमणकर यह सुख का लेश कर भी रहित जात्यन्ध चांडाली भई है, और पूर्व भव का स्नेह का संबंध से तेरे दुःख शोकादि भये हैं, इन

प्राणियों के भव भव विषे स्नेह और बैर पूर्व संबंध से प्रकट होय है, हे अग्निभूत इस चांडाली के कल्याण कारिणी अति निकट भव्यता आई है, सो सुन जो आज ही इसका मरण होयगा, इस लिये हे विचक्षण तुम शीघ्र ही जाकर न्यायके वचनसे उस चांडाली को पुण्यकी प्राप्ति के अर्थ श्रावक के व्रत पूर्वक संन्यास को ग्रहण कराओ। इस भांत सूर्यमित्र गुरु के बचन कर परोपकारी अग्निभूत शीघ्र ही जाकर जहां चांडाली तिष्ठे थी वहां प्राशुक भूमि पर तिष्ठ कर अमृत समान मधुर बचन कर ऐसे संबोधते भये हे पुत्रि,तू पाप कर्मके उदय से चांडाल संबंधी अत्यंत नीच कुल विषे घोर दुःख की भोगन हारी जन्मसे आंधी चांडालकी पुत्री चांडाली भई सो अब उस पाप कर्म की शांति के अर्थ और सुखकी प्राप्ति के अर्थ श्रावक का धर्म अंगीकार कर तिस धर्मकी सिद्धि के अर्थ मेरे कहनेसे मदिरा,मांस, मधु कहिये शहत और पंच उदंबर फल इन का त्यागकर और खाद्य स्वाद्य,लेय,पेय,आदि चतुर्विध आहार का त्याग करके पांच अणुव्रत,तीन गुणव्रत,चार शिक्षा व्रत पूर्वक संन्यास मरण अंगीकारकर क्योंकि यहां आज ही तेरा मरण होयगा इस से सुखकी प्राप्ति के अर्थ अनशन व्रत कर शीघ्र ही कल्याण का साधन कर इस भांत अग्निभूत मुनिराज का वचन सुन कर वह जात्यंधा चांडाली चार प्रकार आहार का त्याग कर शीघ्र हो श्रावक के व्रत धार कर संन्यास अंगीकार करती भई, यह कथा सूर्य मित्र मुनिराज चंद्र वाहन राजा से कहे हैं कि हे राजन, जिस अवसर चांडाली ने संन्यास ग्रहण किया तिस अवसर

विषै इस नागशर्म ब्राह्मण की स्त्री त्रिदेवी, पुत्री की प्राप्ति के अर्थ उत्साह सहित नागों के पूजने को उसी रास्ते आरही थी, तब चांडाली मार्गके वशसे निकट आवती ब्राह्मण की स्त्री त्रिदेवी के वादित्रोंका नाद सुन कर यह निदान करती भई, अहो, व्रत संन्यास के फलकर इस त्रिदेवी-ब्राह्मणी के मैं उत्तम पुत्री होऊं ऐसी प्रार्थना करूं हूं, इस सिवाय और शुभगति को नहीं याचूं हूं, जैसे कोऊ पृथिवी विषे अज्ञानी कुबुद्धि मूर्ख रत्न के बदले काच खरीदे और हाथी से गर्दभ को लेवे, और स्वर्ण देय लोहा लेवे, तैसे यह ज्ञान हीन जात्यंधा स्वर्ग संपदा का कारण जो व्रत संन्यास का फळ पण्य कर्म ताकर निंद्य स्त्री पर्याय की हर्ष कर जाचना करी, इस से उस निदान के दोष कर इस नागशर्म ब्राह्मण के यह नागश्री नामा पुत्री भई है, कैसी है नागश्री! व्रत के संस्कार की है वासना जिसके, सो वह नागश्री आज नागके पूजने को यहां आई थी, तब हम (सूर्यमित्र, अग्निभूत) ने पुत्री की बुद्धि कर इसको सम्यक्त सहित श्रावक के व्रत ग्रहण कराये, सूर्यमित्र मुनिराज कहे हैं, हे राजा चंद्र बाहन साधु का निंदक जो बायुभूत सोई पाप कर्म के उदय कर निंद्य तिर्यंच गति के चार भव विषे महाघोर दुख भोग कर यहां यह नागश्री भई है, हे राजन्, पाप कर्म के उदय कर तो जीव दुर्गति विषे भ्रमण करे है, और पुन्य कर्म के उदय कर शुभ गति को प्राप्त होय है, और पुण्य पाप रूप मिश्र भावकर मध्य गति जो मनुष्य गति उसे प्राप्त होय है, धर्मात्मा जीव धर्म के फल से इंद्र अहमिंद्र चक्रवर्ति पद के सुख भोगवे है, और

पापी जीव पाप कर्म के फल से नरक तिर्यंच गति के घोर दुख पावें हैं धर्मात्मा पुरुष धर्म के फल इंद्र नरेंद्र नागेंद्र तीर्थंकरादिक की संपदा पावे हैं, और पापी जीव पाप से महा दारिद्र पावे हैं जो तीन लोक विषे सार भूत सुख हैं वह समस्त सुख धर्मात्मा जीवों के धर्म के प्रभाव से प्रगट होय हैं और जो जगत विषे नाना प्रकार के दुःखों के समूह हैं, वह पापी जीवों के पाप के फल से उदय होय हैं धर्म के सेवन कर तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेव आदि उत्तम पुरुष होय हैं और पाप के उपार्जन कर दूसरों के दास किंकर घर घर के भिखारी, दीन याचक होय हैं जो वस्तु तीन लोक विषे दुर्लभ है अथवा दूर द्वीपांतर देशांतर विषे वर्ते है, वह समस्त मनोवांछित वस्तु धर्मात्मा पुरुषों के धर्म कर स्वयमेव प्राप्त होय है और पापी जीवों के पाप के उदय से हाथ में तिष्ठी हुई वस्तु भी नष्ट होजाय है इस भांत धर्मात्मा पुरुष धर्म के प्रभावसे सर्व उत्तम गति का पावे हैं, और पापी जीव पापके उदयसे संपूर्ण दुख की खानि जो नरक निगोदगति उसको प्राप्त होय हैं, इस भांत जान कर अहो भव्य हो मन बचन काय की शुद्धता कर सकल पापों को छोड कर स्वर्ग मुक्ति के सुखकी प्राप्त के अर्थ जिनेंद्र देव कर भाषित परमधर्म का सदा काल सेवन करो, धर्म है सो ब्रह्म कहिये लोकांतिक देव, नरेंद्र अमरेन्द्र पद का दायक है, और मैं भी शुभ गतिके अर्थ सदा काल धर्म ही को सेऊं हूं, और धर्म करही अनुपम आत्मीक धर्म को आचरण करूं हूं, इस लिये हे धर्म तू मेरे संसार के दुःख को दूर कर ॥

का किंचित् अभाव से अंतरंग विषे शुद्धताको नहीं प्राप्त होय हैं जैसे मदिरा कर भरे घट को जल से वाहर सैंकडों वार धोवते धोवते भी अंतर्गत मदिरा के दोष से दुर्गंध रहित शुद्ध नहीं होय है तैसे ही अंतर्गत कषाय मल कर व्याप्त मिथ्या दृष्टि जीव बाह्य स्नानादि कर शुद्ध नहीं होय है, केवल नरक निगोद का दायक पाप कर्म ही का बंध करे है, मिथ्यात्व कषाय रूप प्रचुर मोह के मल कर लिप्त कहिये अत्यंत मलीन ऐसे मिथ्या दृष्टि जीव यहां गंगा, जमना, त्रिवेणी, गोदावरी, आदि नदी और पुष्कर, लोहागर आदि तलाव कूवे, कुंड, वावडी, और समुद्र आदि जल के निवाणों विषे स्नान से अपने शुद्धता की वांछा करे हैं वह अज्ञानी जीव बुद्धि के भ्रमण से तृषा की शांति के अर्थ भाडली के जल को पीवे हैं जैसे जेष्ठमास विषे अत्यंत तृषातुर मृगदूर से फूले कांस को देख जल के भ्रम से दौर कर तहां जाय हैं सो कांस से प्यास कैसे मिटे, केवल खेद खिन्न ही होय, तैसे मिथ्यात्व,कर मलीन मिथ्यादृष्टि जीव गंगादिक तीर्थों विषे इतने दिन वृथा ही गमावे है,स्नान कर शुद्ध भया चाहे है सो केवल घोर पाप का बंध करे है शुद्ध नही होय है, शुद्धता तो मिथ्यात्वकषाय मल के अभाव भये ही होय है जल विषे स्नान किये से कदाचित् शुद्धता नहीं होय ऐसा तात्पर्य जानना हाय हाय ! मैं कुबुद्धि कर मिथ्या मार्ग विषे इतने दिन वृथा ही गमाये, अब मेरे कुमति का अभाव भया, सुमति की प्रगटता भई, तिससे पुण्य के उदय कर भले मार्ग को प्राप्त भया हूं और अब ही मैं पुण्यवान

भया हूं, धन्य भया हूं, जिससे इस सूर्यं मित्र मुनिराज के प्रशाद से अनादि काल से अति दुर्लभ अमोलिक ऐसा जैन धर्म मुझे प्राप्त भया है, इत्यादि नाना प्रकार चिंतवन के उपाय कर चित्त विषे द्विगुणित सं दनिर्वेद,को पाय सूर्यं मित्र मुनिराजके बचन रूप अमृतके पानसे बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह कर सहित मिथ्यात्व रूप विषको वमन कर नागश्री का पिता नागशर्म प्रोहित भगवती दीक्षा ग्रहण करता भया और उसही समय और बहुत ब्राह्मण सूर्यं मित्र मुनिराज के बचन से जिन धर्म का अद्भुत महात्म्य जान कर संसार देह भोगादि विषे परम वैराग्य को पायकर शीघ्र ही कुमार्ग को और बाह्य अभ्यंतर परिग्रहको त्याग कर मोक्षके अर्थ मुनीका संयम ग्रहण किया, और वह नागश्री अपने पूर्वभव सुन कर अनाचार के पाप से भयभीत होय और संवेगरूप आभूषण को पाय कर उसही समय एक सुपेद साडी बिना समस्त परिग्रहका त्यागकर बाल्यपणे में ही अति प्रवीण अर्जिका भई और नागशर्म प्रोहित की स्त्री त्रीदेवी आदि बहुत ब्राह्मणी भी जैन धर्म को सुनकर संसार देह भोग विषे वैराग्य को पाय मोहरूप वैरी का घात कर शीघ्र ही स्वर्ग मोक्षादिक की प्राप्ति के अर्थ परिग्रह का त्याग कर सार भूत सुखों की खान और मुक्ति की माता समान ऐसी भगवती दीक्षा अंगीकार करती भई और चंपापुरी का राजा चंद्रवाहन भी नागश्री की कथा के श्रवण मात्र से विषय भोगादि विषे उदास होय लोक पाल पुत्र को राज देय बहुत भव्य जीवों सहित मन, बचन कायकी शुद्धता कर मोक्ष के

अर्थ जिन मुद्रा को हर्ष से धारण करी और राजा चन्द्र वाहन की बहुत राणियां भी वैराग्य को पाय भरतार की साथ मोक्ष सुख के अर्थ शीघ्र ही आर्यका के व्रत आचारण किये, और अन्य भी पुरवासी बहुत लोक नागश्री की कथा रूप अमृत पान से मिथ्यात्व रूप विष का वमन कर और परम सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर कितनों ने तो मोक्ष की सिद्धि के अर्थ महाव्रत धारण किये, और कितनों ने अणुव्रत ग्रहण किये, और केईयों ने धर्म विषे महान श्रद्धा ही ग्रहण करी ॥

अथानन्तर-तिस पीछे वोह सूर्यमित्र मुनिराज वडे संघ सहित धर्म की प्रभावनाके अर्थ शीघ्र ही विहार करने को गमन किया और सूर्यमित्र गुरूके वचन कर वह समस्त नवीन दीक्षित शिष्य निरन्तर सावधान यत्नाचार से अग पूर्वादि समस्त श्रुत को पढ़ते भये, वह समस्त मुनिराज सूर्य मित्र गुरु कर सहित कर्म रूप वन विषे दावानल समान ऐसा वारह प्रकार घोर तप भव भोगरूप वैरी की शांति के अर्थ करते भये, और सूने घर, पर्वत की गुफा, पर्वत के शिखर पर्वतके दराडे और निर्जन गहन वन आदि स्थानों विषे ध्यान और अध्ययन की सिद्धि के अर्थ वह मुनि प्रमाद रहित निवास करते भये, और गमन करते वन पर्वत आदि स्थानों विषे जहां सूर्य अस्त होय तहां ही वह मुनि जीव दया के अर्थ कायोत्सर्ग कर तिष्ठते भये, और वह मुनि एकाग्रचित्त कर यत्न से निरंतर धर्म शुक्ल ध्यान को चिंतवे हैं, और आर्तरौद्रध्यान को कदे भी नहीं विचारे हैं और वह मुनि सदाकाल

भव्य जीवों को धर्म का उपदेश स्वाध्याय षट आदि शुभ कर्मों को कहे हैं और भोजन कथा स्त्री कथा आदि विकथाओं को कभी नहीं करे हैं ॥

और वह मुनि सारभूत अठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तर गुण और चंद्रमा समान उज्वल चारित्र को यत्न सहित मन, वचन, काय की शुद्धता कर अतिचार रहित पाले हैं और वह मुनि कलह, युद्ध, और स्त्रियों के रूप और मिथ्या दृष्टियों के स्थान, आदि के देखने विषे तो अन्ध समान हैं और अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, और अरहंत के प्रतिबिंब, निर्वाण भूमि आदि धर्म के स्थानों को अवलोकन करे हैं और वह ज्ञानी मुनि खोटे तीर्थ, खोटे स्थान, और खोटे मार्ग इन के गमन विषे पांगुला समान हैं, और निर्वाण भूमि आदि भले तीर्थ और भले गुरु यात्रा आदि धर्म कार्यों विषे गमन करन हार हैं, और वह मुनि स्त्री कथा आदि विकथा और पराई निन्दा आदि के करने विषे गूंगा समान हैं, और उत्तम पुरुषों की समीचीन कथा सिद्धांत और जीवादिक तत्वोंका स्वरूप आदि कहने विषे उत्साह सहित हैं, और खोटे शास्त्र, खोटी कथा, खोटे बचन, तिनके सुनने विषे बहरे समान हैं और सरवज्ञ कर कहे आगम और आत्म तत्वादि धर्म आदि के सुनने विषे सदा सावधान हैं, और वह मुनिराज परनिंदा कर रहित हैं और स्वाध्याय ध्यानादिक विषे निरंतर चित्त को लगावे हैं और पाप के लेशमात्र से अति भयभीत केवल मोक्ष ही के बांछक हैं, और वह मुनि घोरबीर उपसर्ग विषे निर्भय समस्त विकार

कर रहित परिषहों के सहने विषे महाधीर वीर हैं और पाप कर्म का बन्ध होने विषे बड़े कायर हैं, इत्यादि नाना प्रकार शुभ आचरण कर शोभायमान जीते हैं मोह रूप वैरी के सावंत जिन्होंने, बाह्य अभ्यंतर परिग्रह कर रहित सारभूत गुणों कर सहित तप ही ह धन जिन के, ऐसे वह मुनिराज सूर्यमित्र गुरु कर सहित यत्न से नाना देश पुरग्रामादिक विषे विहार करे हैं, और वह नागश्री आदि समस्त आर्यका अनेक देश पुर ग्रामादिकन में विहार करती भई, कैसी हैं वह आर्यका शुभ है आशय जिनका और धर्म ध्यान विषे तत्पर सदा कालसिद्धांत के पढ़ने विषे है उद्यम जिन के, और हता है मोह, प्रमाद, और इंद्रियों की वांछा जिन्होंने, और व्रत शीलादि कर भूषित, आत्म कार्य के साधन विषे उद्यमी, पाप से भयभीत, सरल हैं परिणाम जिनके, और विकार रहित है भेस अंग जिनके, नाना प्रकार तपश्चरण विषे तत्पर अत्यंत निर्मल हैं ॥

अब सूर्यमित्र मुनिराज के दुद्धर तपश्चरण कर और परिणामों की अत्यंत विशुद्धता कर और अति निर्मल आचार संयम कर और धर्म शुक्लादि समीचीन भावों कर उग्र दीप्त आदिक सार भूत नाना प्रकार की रिद्धि स्वयमेव प्रगट होती भई, सो वह सूर्यमित्र मुनिराज संघ सहित पृथिवी विषे विहार करते और अनेक भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग विषे स्थापन करते धर्मोपदेश रूप अमृत की वरषा कर समस्त जीवों को तृप्त करते महन्त पुरुषों के गुरु एक दिन धर्म की प्रभावना के अर्थ

राजगृह नगर के समीप आय कर प्राशुक बन की भूमि विषे विराजे, उस अवसर विषे कौशांबी पुरी का राजा अतिबल सों राजगृह नगर का सुबल नामा राजा उस का काका सुबल के मिलाप को आय कर सुबल कर सन्मानित भया थका प्रीत कर उस ही राजगृह नगर विषे तिष्ठे था, तब वह सुबल अतिबल दोनों राजा धर्म के वांछक बनपाल के मुख से सूर्यमित्र मुनिराज का आगमन जान कर शीघ्र ही धर्म के अर्थ मुनिराज की बंदना का बन में गये, वहां तिष्ठते दीप्त ऋद्धि कर प्रकाशमान सूर्यमित्र मुनिराज को शीस नवाय प्रणाम कर हर्ष सहित प्रासुक अष्टद्रव्य कर भक्ति भाव से पूजन करी और उपमा रहित और समस्त दिशाओं के अंधकार के विनाशक ऐसे सूर्यमित्र मुनि के देह की देदीप्यमान क्रांति देख कर राजगृह नगर का राजा सुबल बहुत विस्मय को प्राप्त भया और तपश्चरण का अतिशय देख हरषाय मान होय अपने हृदय विषे ऐसे चितवन करता भया। अहो ! यह सूर्यमित्र पुरोहित सर्व विप्रों में प्रधान मेरा दास समान शुभ चिंतक किंकर था, सो भगवती दीक्षा, और तपश्चरण के अनुपम फल से अनेक सूर्य समान देदीप्यमान रूपवान महातेजस्वी महान ज्ञानी कांति कर प्रकाशमान सकल संघ विषे प्रधान ऐसा गुणवान सूरपद का धारक भया है, अहो इन पुण्यवंत महंत पुरुषों के इस तप संयम ध्यानादिक कर इस ही लोक विषे सत्कार और पूज्यपना और नाना प्रकार के चमत्कारों की प्रत्यक्ष दिखावनहारी अनेक महान ऋद्धि प्रगट होय

हैं परलोक विषे कैसी सारभूत विभूति संपदा और कौनसा उत्तम उच्च पद होयगा; इससे मैं अपने चित्त विषे ऐसी जानूं हूं कि इस तपश्चरण के फल से परलोक विषे इस से भी अधिक ऋद्धि संपदा पाइये है ऐसा मेरे निश्चय है। और जिस राज्य संपदाके त्यागन कर इस भव विषे और परभव विषे परम संपदा पाइये है, तो उस राज्य संपदा के छोड़ने में ज्ञानवंत पुरुषों के काल का विलम्ब कहां ? अर्थात् कुछ भी काल का विलंब नहीं है, इस भांत चित्त विषे विचार कर राजगृह नगर का राजा सुबल धर्म विषे और धर्म के फल विषे परमसंवेग को पाय और संसार देह भोगादि विषे अत्यंत उदास होय राज्य का अत्यंत पाप रूप भार को, और गृह बंधन के छोड़ने को और कल्याण रूप निर्मल तपश्चरण अंगीकार करने को उद्यमी भया, और उसी समय तप की प्राप्ति के अर्थ कौशांबी का राजा जो अतिबल उसे कहता भया। कि हे धीमन नृप ! अतिबल मगधदेश राजगृह नगर का परिपूर्ण राज्य त ग्रहण कर, मैं संयम अंगीकार करूं हूं, तब धर्मात्मा राजा अतिबल सुबल को कहता भया। हे राजन् ! जो महान दोष राज का तुम को दीखा सोई महान दोष विशेष सहित अब मुझे भी दिखाईं दिया है और तप धर्म चारित्र के जो गुण तुम को दीखे वैसे ही गुण भेद विज्ञान रूप निर्मल नेत्र कर निश्चय सेती मुझे अधिक दीखे हैं॥ इससे तप संयमादिक गुणोंकी प्राप्ति के अर्थ में भी यह राज्य रूप पाप का भार छोड़ कर मुक्ति के राज्य के अर्थ तुम्हारे साथ ही तप संयम अंगीकार करूंगा,

ऐसे बचन कर अतिबल को राज्य सुख से पराङ्मुख जान राजा सुबल मीनध्वज पुत्र को राज्य संपदा देकर आत्महित के अर्थ अतिबलादिक बहुत राजाओं सहित राजा सुबल सर्व परिग्रह का त्याग कर शीघ्र ही सूर्यमित्र मुनिराज के समीप महामुनि भया, उस पीछे उन सर्व मुनियों कर सहित सूर्यमित्र मुनिराज धर्म की प्रभावना विषे उद्यमी जगत के बंधु सब के हित कारी, परमप्रवीण, मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति के अर्थ, भव्य जीवों के संबोधने के अर्थ पुरग्राम, बनादिक के विषे विहार करने को गमन करते भये ॥

अथानंतर–नागश्री आर्यका निज शक्ति प्रमाण यावज्जीव निर्दोष तप कर और अतिचार रहित भलीभांत संयम को पाल कर अंत विषे एक महीने की आयु शेष जान समाधिमरण की सिद्धि के अर्थ समस्त आहार का त्याग कर और शरीर से नेह का त्याग कर आनंद सहित संन्यास अंगीकार किया, और उस समय क्षुधा, तृषाआदि समस्त परीषहों को जीत और उपवास रूप अग्नि के संयोग कर शीघ्र ही शरीर को सुकाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चार आराधना का आराधन कर धर्म ध्यान विषे तत्पर यत्नाचार से समाधि मरण कर प्राणों का त्याग किया, निर्दोष तप संयम के प्रभाव कर सुखों की खान सोलवां जो अच्युत स्वर्ग उस विषे आकाश स्फाटिक मणि मई मनोहर पद्मगुल्म विमान विषे वह नागश्री का जीव दिव्यरूपवान पद्मनाभ

वह देव तप संयम से उपार्जनाकरी जो समस्त दिव्य सुखों की खानि ऐसी परम विमान संपदा को अंगीकार करते भये, यह देव सदा काल धर्म विषे तत्पर एक सौ सत्तर क्षेत्रों विषे, जाय कर धर्म के अर्थ तीर्थंकरों के पंचकल्याणक विषे समीचीन पूजा करे हैं, और अवशेष केवलियों की भक्ति कर ज्ञान और निर्वाण कल्याणक विषे पूजन करे हैं, तथा गणधर आचार्य उपाध्याय परमसाधु आदि समस्त मुनिराजों की पुण्य की उपजावन हारी पूजा करे हैं इत्यादिक अनेक शुभ आचरण कर पुण्य का उपार्जन करते वह देव पुण्य के प्रभाव से हजारों देवांगना कर सहित नाना प्रकार के भोगों को भोगते हैं, और देव लोक विषे रात दिन का विभाग नहीं है, और दुखदाई ऋतु नहीं हैं, सुखदाई सास्वता सुखमा सुखमा काल प्रवर्ते है, देव लोक विषे दीन, दरिद्री, निर्धन, रोगी, दुर्भागी, दुखी और जिस का बचन किसी को भी नहीं सुहावे ऐसा दुःखारी उन्मत्त कहिये मदोन्मत्त और विकलांग इत्यादि और भी अशुभ सामग्री स्वप्न विषे भी कदाकाल नहीं दीखे है, सो वह देव कैसे हैं, देवलोक विषे सर्व ही देव दिव्य लक्ष्मी मनोहर कांति अनुपम दिव्यधैर्य कर शोभायमान समस्त दुःखों कर रहित सुख रूप अमृत के समुद्र के मध्य प्राप्त भये हैं और वह पद्मनाभादि समस्त देव कैसे हैं, समस्त दुःखों कर रहित हैं और नेत्र नहीं टिमकारे हैं, महा प्रवीण सास्वत जिनेंद्र देव की पूजा विषे तत्पर हैं, सात धातु, सात उपधातु, मलमूत्र, पसेव, खेद कर रहित दिव्य देह के धारी हैं, और तीन

नायका जो पुत्र के मुख रूप चंद्रमा का अवलोकन कर सदा प्रसन्न रहे हैं, ऐसे वह सेठाणी विषाद करे, एक दिन तीन ज्ञान आदि अनेक गुण रत्नों के सागर, जगत के हितकारी, मुनि श्रावक देवन कर वंदित, कल्याण रूप संघ कर सहित, ऐसे वर्द्धमान नामा मुनिराज धर्मात्मा जीवों के पुण्य कर प्रेरे भव्य जीवों के संबोधने को उज्जयनी के बन में आये, उन के आगमन को जान कर राजा वृषभांक आनंद घोषणा दिवाय चतुरंग सेना कर वेष्टित मुनिराज के बन्दने को निकला, राजा की भेरी का शब्द सुन कर यशोभद्रा सेठाणी अपनी सखी से ऐसे पूछी जो यह भेरी का शब्द आज किस कारण से भया तब सखी ने कही, आज बन के मध्य महामुनी पधारे हैं और उन की बंदना को अनेक वादित्रों के नाद कर महोत्सव सहित राजा बृषभांक जाय हैं, यह वचन सुन कर वह सेठाणी यशोभद्रा धर्म की सिद्धि के अर्थ और मनोवांछित फल की प्राप्ति के अर्थ पूजन की सामग्री लेय मुनि के समीप गई, तहां संघ सहित विराजमान वर्द्धमान मुनिराज को नमस्कार कर, पूजन कर यशोभद्रा सेठाणी मुनि राज के समीप बैठी, कैसे हैं मुनीराज ? इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्रादिकों कर वंदनीक पूजनीक हैं, मुनिराज के मुख की बानी स्वर्ग मुक्ति का कारण, इंद्र नरेंद्र नागेंद्रादिको की संपदा की दायक और समस्त कल्याणों का कारण जिनेंद्र भगवान कर भाषित, दया मई, मुनिश्रावक के भेद से दो प्रकार धर्म श्रवण कर सेठाणी यशोभद्रा हाथ जोड़ सिर नवाय नमस्कार कर मुनिराज को ऐसे पूछती भई, हे भगवन्,

वह देव तप संयम से उपार्जनाकरी जो समस्त दिव्य सुखों की खानि ऐसी परम विमान संपदा को अंगीकार करते भये, यह देव सदा काल धर्म विषे तत्पर एक सौ सत्तर क्षेत्रों विषे, जाय कर धर्म के अर्थ तीर्थंकरों के पंचकल्याणक विषे समीचीन पूजा करे हैं, और अवशेष केवलियों की भक्ति कर ज्ञान और निर्वाण कल्याणक विषे पूजन करे हैं, तथा गणधर आचार्य उपाध्याय परमसाधु आदि समस्त मुनिराजों की पुण्य की उपजावन हारी पूजा करे हैं इत्यादिक अनेक शुभ आचरण कर पुण्य का उपार्जन करते वह देव पुण्य के प्रभाव से हजारों देवांगना कर सहित नाना प्रकार के भोगों को भोगते हैं, और देव लोक विषे रात दिन का विभाग नहीं हैं, और दुखदाई ऋतु नहीं हैं, सुखदाई सास्वता सुखमा सुखमा काल प्रवर्ते है, देव लोक विषे दीन, दरिद्री, निर्धन, रोगी, दुर्भागी, दुखी और जिस का बचन किसी को भी नहीं सुहावे ऐसा दुःखारी उन्मत्त कहिये मदोन्मत्त और विकलांग इत्यादि और भी अशुभ सामग्री स्वप्न विषे भी कदाकाल नहीं दीखे है, सो वह देव कैसे हैं, देवलोक विषे सर्व ही देव दिव्य लक्ष्मी मनोहर कांति अनुपम दिव्यधैर्य कर शोभायमान समस्त दुःखों कर रहित सुख रूप अमृत के समुद्र के मध्य प्राप्त भये हैं और वह पद्मनाभादि समस्त देव कैसे हैं, समस्त दुःखों कर रहित हैं और नेत्र नहीं टिमकारे हैं, महा प्रवीण सास्वत जिनेंद्र देव की पूजा विषे तत्पर हैं, सात धातु, सात उपधातु, मलमूत्र, पसेव, खेद कर रहित दिव्य देह के धारी हैं, और तीन

हस्त प्रमाण ऊंचा है सुन्दर शरीर जिन का और बाईस सागर की है आयु जिन की और बाईस
हजार वर्ष व्यतीत भये मानसिक अहार का सेवन करे हैं ग्यारह मास गये एक श्वास लेवे हैं और
अनेक गुणों के भाजन अवधि ज्ञान के योग कर छटे नरक की पृथिवी पर्यंत शुभाशुभ रूपी द्रव्यों
को जाने हैं, और वह शुभ परिणामों के धारक देव षष्टम नरक पर्यंत विक्रिया ऋद्धि के बल से गम-
नादि करने को समर्थ हैं, देवांगनाओं के दिव्य रूप सुन्दरता मनोहर श्रृंगार सहित नाना प्रकार नृत्य
देखते और अपसराओं के मुख से मनोहर गान सुनते और रत्न मई यह महल, भद्रशालादि, वन
मे , कुलाचल आदि पर्वत और असंख्यात द्वीप समुद्रों विषे देवों कर सहित क्रीड़ा करते इच्छा
पूर्वक हर्ष सहित गमन करते पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के फल से पूर्वोक्त नाना प्रकार भोगों को भोगते
सुख सागर के मध्य प्राप्त भये, गये काल को नहीं जानते संते उस अच्युत स्वर्ग विषे बाईस सागर
पर्यंत वह पद्मनाभादि देव सुख से तिष्ठते भये, इस भांत वह पद्मनाभादि देव पुण्य के उदय से
परम सुख की करण हारी देव लोक की विभूति को पाय कर तिस अच्युत स्वर्ग विषे सागरों पर्यंत
उपमा रहित भोग सुखों को भोगे हैं, ऐसे जान कर भो ज्ञानी जन हो, सुख की प्राप्ति के अर्थ सकल
शक्ति कर एक भगवान् भाषित जैन धर्म का सेवन करो, ऐसा उपदेश है धर्म है सो समस्त मनोर-
थादिक का उपजावन हारा है, और धर्मात्मा पुरुष धर्म को ही आश्रय करे हैं, और इस धर्म कर ही

यहां सत् पुरुषों के तीर्थंकरादि कल्याण रूप पदवी होवे है, इस धर्म के अर्थ निरंतर मेरा नमस्कार हो, और जैन धर्म के सिवाय और कोई तीन जगत विषे सुखकारी वस्तु नहीं है, और इस धर्म का बीज सम्यग्दर्शन है, और धर्म विषे निरंतर परिणामों को धारण करता ऐसा जो मैं सकलकीर्ति मुनि तिस के, हे धीमन्! चारघातिया कर्मों का घात कर॥ऐसी सप्त विभक्तों कर संबोधन सहित धर्म की महिमा वर्णन कर धर्म से अर्हंत पद की प्रार्थना करी, ऐसा यहां भावार्थ है॥

इत्याचार्य सकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ तिसकी देश भाषा मय वचन का विषे नागश्री नागशर्म आदि का दीक्षा ग्रहण और स्वर्ग गमन का है वर्णन जिस में ऐसा षष्टम सर्ग समाप्त भया॥



सप्तम अध्याय

(सुकुमाल का जन्म)

चौपाई—सकल तीरथसिद्ध महेश। गणनायक पाठक परमेश ॥
सब साधुन के प्रणमों पाय। जैनधर्म निहचे उरलाय ॥१॥

अथानंतर—सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक् चारित्र की परम विशुद्धता को प्राप्त भये और निरअतिचार चारित्र कर परम शोभायमान ऐसे वह दोनों सूर्यमित्र अग्निभूत महामुनि मोक्ष मार्ग को प्रवर्तावत अनेक देशों विषे यथेच्छ विहार करते एक दिन वाणारसी नगरी के बाहिर बन विषे आये, तहां वह दोनों मुनि आत्म ध्यान विषे अत्यंत निश्चल चित्त को स्थापन कर चार घातिया के घातने निमित्त अद्भुत योग धारते भये, मुक्ति रूप महल की सीढ़ी समान क्षपकश्रेणी पर आरूढ होय प्रथम शुक्ल ध्यान रूप खड्ग कर आदि विषे मोह रूप वैरी का घात किया, उस पीछे वह मुनि जय भूमि को पाय कर शेष घातिया जिस ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय रूप वैरियों का द्वितीय

नायका जो पुत्र के मुख रूप चंद्रमा का अवलोकन कर सदा प्रसन्न रहे हैं, ऐसे वह सेठाणी विषाद करे, एक दिन तीन ज्ञान आदि अनेक गुण रत्नों के सागर, जगत के हितकारी, मुनि श्रावक देवन कर वंदित, कल्याण रूप संघ कर सहित, ऐसे वर्द्धमान नामा मुनिराज धर्मात्मा जीवों के पुण्य कर प्रेरे भव्य जीवों के संबोधने को उज्जयनी के बन में आये, उन के आगमन को जान कर राजा वृषभांक आनंद घोषणा दिवाय चतुरंग सेना कर वेष्टित मुनिराज के बन्दने को निकला, राजा की भेरी का शब्द सुन कर यशोभद्रा सेठाणी अपनी सखी से ऐसे पूछी जो यह भेरी का शब्द आज किस कारण से भया तब सखी ने कही, आज बन के मध्य महामुनी पधारे हैं और उन की बंदना को अनेक वादित्रों के नाद कर महोत्सव सहित राजा बृषभांक जाय हैं, यह वचन सुन कर वह सेठाणी यशोभद्रा धर्म की सिद्धि के अर्थ और मनोवांछित फल की प्राप्ति के अर्थ पूजन की सामग्री लेय मुनि के समीप गई, तहां संघ सहित विराजमान वर्द्धमान मुनिराज को नमस्कार कर, पूजन कर यशोभद्रा सेठाणी मुनि राज के समीप बैठी, कैसे हैं मुनीराज ? इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्रादिकों कर बंदनीक पूजनीक हैं, मुनिराज के मुख की बानी स्वर्ग मुक्ति का कारण, इंद्र नरेंद्र नागेंद्रादिको की संपदा की दायक और समस्त कल्याणों का कारण जिनेंद्र भगवान कर भाषित, दया मई, मुनिश्रावक के भेद से दो प्रकार धर्म श्रवण कर सेठाणी यशोभद्रा हाथ जोड़ सिर नवाय नमस्कार कर मुनिराज को ऐसे पूछती भई, हे भगवन्,

मेरे पुत्र होयगा कि नहीं सो आप कृपा कर कहो, तब मुनिराज इस भांत कहते भये, हे भद्रे,महा-धीर, वीर, दिव्य, रूपवान, गुणों का सागर महान पुण्य के फल का भोक्ता, समस्त जगत में मान्य, सकल कार्य के करने विषे महान् सामर्थ्यवान् ऐसा पुत्र तेरे होगा, परन्तु तेरा पति सुरेंद्रदत्त संसार के सुखों विषे अत्यंत उदास है और तपोबन प्रति जाने की वांछा करे है, सोई पुत्र के अभाव से नहीं जाय है, सो धर्मात्मा सुबुद्धि जबलग अपने पुत्र का मुख नहीं देखेगा तब लग धन संपदा के मोहसे घर में तिष्टेगा,पीछे पुत्र का मुख देख कर उत्तम गुणों का आकर सेठ सुरेंद्रदत्त सकल संपदा का और तुम्हारा त्याग कर निर्दोष तप ग्रहण करेगा, और तेरा पुत्र भी अति धर्मात्मा धर्म का सेवन हारा जब लग दिगंबर मुनि के बचनादिक प्रगट नहीं सुनेगा तब लग अपने घर में रहेगा, और मुनि के दर्शन मात्र कर अथवा मुनि के प्रत्यक्ष बचन के सुनवे कर सो तेरा पुत्र धीर बीरों के गोचर दुर्द्धर तप अवश्य ग्रहण करेगा, इस भांत वर्द्धमान मुनिराज के वचन सुन कर वह सेठानी यशोभद्रा आपके इष्ट अनि-ष्टादि के संयोगसे मन विषे हर्ष और विषाद सहित भई ॥ भावार्थ-पुत्र होयगा यह तो हर्ष भया और पुत्र का मुख देखते ही सेठ दीक्षा ग्रहण करेगा यह विषाद भया ॥

सुकुमाल का जन्म।

अथानन्तर-तब कितनेक दिनोंकर पुण्य के उदय से सेठानीके गर्भाधान भया,वह नागश्री

का जीव पद्मगुल्म नामा देव आयु पूर्ण कर इस सेठानी यशोभद्रा के गर्भ में आया तव यह यशोभद्रा सेठाणी अपने मन में ऐसे विचार करती भईं कि जो सेठ मेरे गर्भाधान जानेगा तो अवश्य तप ग्रहण करेगा, ऐसे जान कर सेठके तप ग्रहण के भय कर वह सेठानी यशोभद्रा सेठ आदि समस्त स्वजनों से अतिप्रछंन्न वृत्ती कर एकान्त गृह में तिष्ठती अपने गर्भ को वढाया, भावार्थ-किसी को भी गर्भ नहीं जनाया, अनुक्रम से नव मास पूर्ण भये पीछे सेठानी रमणीक भूमि ग्रह विषे प्रवेस कर देदीप्यमान कांती का पुंज ऐसा पुत्र जनती भईं, तव प्रसूत के वस्त्र और तिस वालक के मलकर भरे वस्त्रों को घर से बाहिर सरोवर की पाल पर दासी धोवे थी उसे देख कर एक ब्राह्मण चित विषे ऐसे विचारता भया, अहा यहां यह सुरेंद्रदत्त सेठ ही पुत्र रहित था सो आज इस सेठ के अवश्य पुत्र भया है, ऐसे वस्त्र प्रक्षालन रूप अनुमान ज्ञान कर पुत्र की उत्पति जान सो वह ब्राह्मण हर्ष सहित सेठ के समीप आय कर आश्चर्यकारी वचन ऐसे कहता भया, कैसा है ब्राह्मण । वेणु (वीणा) कर रुक रहा है दाहिणा कर जिसका भावार्थ-आशीर्वाद देने का दक्षिण हाथ वीणा कर रुका था इससे आशीर्वाद दिये विना ही आनंद से कहता भया, हे श्रेष्ठिन् तेरे अखंड पुण्य के प्रभाव कर आज अवश्य पुत्र जन्मा है, यह बचन ब्राह्मण के सुन सेठ हृदय विषे परम आनंद को प्राप्त भया, ब्राह्मण के वचन से सुरेंद्रदत्त सेठ अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त होय कर, और हर्ष सहित अपने पुत्र का मुख अवलोकन कर

और ब्राह्मण को बहुत संपदा देय,और गृह पुत्रदारादिकों कर सहित सकल संपदा को त्याग कर और संसार देह भोगादि विषे सर्वत्र वैराग्य को पायकर तप के अर्थ वन विषे गया,तहाँ श्रीगुरु के चरणारविंद को नमस्कार कर सुरेंद्रदत्त सेठ समस्त परिग्रह का त्याग कर मन बचन काय की विशुद्धता कर हर्ष सहित मुक्तिके अर्थ दीक्षा ग्रहण करता भया, उस पीछे सुख बुद्धि सुरेंद्रदत्त मुनि अपनी शक्ति को प्रगट कर स्वर्गादि मुक्ति पर्यंत सुखका दायक संयम सहित दुर्द्धर घोर तप करते भये॥

अथानंतर यशोभद्रा सेठानी जिनालय विषे जिनेंद्र देवों का पूजनादि महोत्सव कर और वस्त्रा भरणके दान कर समस्त सुजनोंको संतोषितकर और नाना प्रकार गीत वादित्र नृत्यनादिकों कर सकल कुटुंब सहित पुत्रके जन्मका बड़ा उत्सव करती भई उस पीछे अन्य दिन विषे बालककी माता यशोभद्रा अपने स्वजनोंकर सहित अत्यन्त कोमल शरीरका अवयवपणासे बालक का सुकुमाल ऐसा नाम प्रगटकिया,अपने पुत्रका सुकुमाल ऐसा नाम प्रसिद्ध कर पुण्य की प्राप्ति के अर्थ जिनेंद्र भगवान के मंदिर विषे और अपने घर के चैत्यालय विषे बडी विभूतिकर पूजनादि महोत्सव करावतीभई बाल चंद्र समान अत्यंत सुन्दर सो बालक समस्त परिजन के नैनों के परमानंद कारी स्फुरायमान कांति और मनोहर आलापन कर और शुभ अंगोपांग अवयवों सहित मधुर गुणोंकर और अपनी अवस्था के योग्य मधुर पयपानादिकोंकर अनुक्रमसे सारभूत वस्त्राभरण कर जगतमें अत्यंत प्यारा ऐसा सुकुमाल

लावण्यता की खान ऐसे जोड़े बत्तीस स्त्रियों कर सहित महान पुण्य के उदय से निरतर इंद्र समान भोग भोगता ऐसा सुकुमाल कुमार चिंता रहित निश्चिन्त सुख सागर के मध्य तिष्ठता गये काल कों नहीं जाने है, एक दिन कोई एक व्योपारी देशान्तर से आय राजा वृषभांक को एक अमोलक रत्न कंबल दिखाया, सो राजा वृषभांक उस रत्नकंबल को देख बहुत मोल का जान बहुत द्रव्य देने की शक्ति के अभाव से उस ही समय व्योपारी को वापिस देदिया ॥

भावार्थ–रत्नकंबल के मोल योग्य राजा के घर में द्रव्य नहीं था तब वह व्योपारी नृप से रत्नकंबल को ले शीघ्र ही जाय कर यशोभद्रा सेठानी को दिखाया, और द्रव्य लेने के अर्थ मोल कहा सेठानी रत्नकंबल को अपने पुत्र के योग्य जान उस व्योपारी को यथा योग्य बहुत द्रव्य देय शीघ्र ही महल विषे अपने पुत्र के पास भेजा, सुकुमाल कुमार रत्नकंबल को भारा और कठिन देख कही यह तो मेरे योग्य नहीं, ऐसे कह कर हाथ से डार दिया, तब यशोभद्रा रत्नकंबल के खंड खंड कर सुकुमाल की बत्तीस वनिताओं की सुंदर पगरखीयां (जूतीयें) कराय दई, एक दिन सुकुमाल की स्त्री सुदामा, पावों से पगरखी खोल अपने महल के शिखर पर बैठी कितनेक काल दिशा अवलोकन करंती पश्चिम द्वार के मंडप विषे तिष्ठे थी, उस ही समय गृध्र पक्षी महल में प्रवेश कर मांस के भास से एक पगरखी को चौंच से उठाय फिर आकाश से उड़कर वृषभांक राजा

के महल के शिखर पर खाने के अर्थ बैठा अति कोप से अपनी चोंच कर पगरखी को घात करता संता खाने को असमर्थ होय कर राज मंदिर विषे गेरता भया, तब राजा वृषभांक रत्नकंवल की पगरखी देख अचरजवान हुआ संता कहता भया कि यह रमणीक पगरखी कौन की है, ऐसे किसी निकटवर्ती पुरुष से पूछी, राजा के बचन सुन कर निकटवर्ती पुरुष कही, हे राजन्! यह रमणीक पगरखी सुकुमाल की कांता (स्त्री) की है, कैसा है सुकुमाल? महान लक्ष्मीवान, महान सुख संपदा कर इंद्र समान शोभायमान है, ऐसे निकटवर्ती पुरुषों के बचन श्रवणमात्र से कौतुक कर पाया है कौतुक जाने ऐसा नृप वृषभांक सुरेंद्रदत्त सेठ का पुत्र महा लक्ष्मीवान ऐसे सुकुमाल के देखने को शीघ्र ही चला। तब यशोभद्रा सेठानी सुकुमाल की माता, नृप को आवता जान कर नृप के सन्मुख जाय बड़ी विभूति कर अपने घर के मध्य नृप को प्रवेश करावती भई, वहां नृप को रत्न जड़ित स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाय बहुत भेट नृप के आगे धर सुकुमाल की माता यशोभद्रा सेठानी नृप को ऐसे पूछती भई, हे देव! आप अपने आगमन कर आज मेरा घर पवित्र किया, परन्तु अबार तुम्हारे आगमन विषे कारण कहा है, सो कृपा कर कहो। तब वृषभांक नृप से ऐसे कही, हे भद्रे! मैं केवल तेरे पुत्र के देखने के अर्थ आया हूं, और कुछ भी कारण नहीं, तब वह यशोभद्रा सेठानी महल के मध्य खण विषे नृप को बठाय हर्ष सहित अपने पुत्र को लाय दिखावती भई, राजा वृषभांक सुकुमाल के विस्मय

कारी रूप को अतिशय कर देख कर प्रसन्न होय अत्यंत सन्मान कर सुकमाल को आधे सिंहासन पर बैठाय लिया, तब यशोभद्रा सेठानी महीपति से ऐसी प्रार्थना करती भई, हे देव! आज हमारे घर भोजन कर अपने महलों में पधारना योग्य है, अन्यथा कहिये भोजन किये विना आप का पधारना योग्य नहीं है, ऐसी सेठानी की प्रार्थना पर राजा वृषभांक सुकुमाल सहित वहां स्वर्ण के थाल में परम मनोह भोजन किया, भोजन किये पीछे नृप सेठानी को ऐसे कहता भया, 'हे कल्याणरूपणी ! इस सुकुमाल के निंद्यनीक तीन व्याधी कैसी हैं, तिन के मिटने के उपाय विषे तू क्यों मंद है? तव सेठानीने कहो इस के व्याधि कौनसी हैं, तब नृप कहता भया, एक तो आसन की दृढता नहीं चलायमानपना है, दूजे प्रकाश विषे नेत्र से जल स्रवे है, तीजे भोजन विषे एक एक चांवल खाय है, यह बचन सुन कर सेठानी सुकुमाल की माता यशोभद्रा ने कही। हे राजन ! जो आपने तीन व्याधि कही सो व्याधि इस सुकुमाल के कदे भी नहीं हैं, यह सुकुमाल अत्यंत कोमल दिव्य शय्या विषे शयन करे है, और अत्यन्त कोमल गद्दी तथा गालीचों पर सदा काल सुख से बैठे है, और आज आप की साथ सिंहासन पर बैठा, और हमने मंगल के अर्थ इस सुकुमाल के मस्तक पर बहुत सिरसों क्षेपी, वह सिरसों के कण यहां अबार इस के सुखासन विषे पड़े हैं, सो तिस सिरसों का कर्कशपना कर यह सुकुमाल चलायमान भया, और इस पुण्यात्मा ने देदीप्यमान मणिमई मंदिरोंके मध्य एक रत्न की

प्रभा के सिवाय और प्रभा कभी भी नहीं देखी है, और आज हमने आप की दीपक कर आरती उतारी सो आरती के प्रताप रूप प्रभा के देखने से इस अत्यंत सुखिया के दुःख की उत्पत्ति का कारण नेत्रों में से शीघ्र ही जल स्रवता भया, और दिन के अस्त विषे सरोवर विषे मुकुलित कमल की कर्णिका में धोये हुये भीजे मनोग्य तंडुल धर देवें हैं फिर प्रभात समय तिन तंडुलों का मनोहर अति कोमल सुगंधायमान भात, यह कुमार केवल भोजन करे है, सो उन तंडुलों के अल्प भात कर भोजन विषे दोनों के तृप्त पना नहीं जान कर आज हमने तिन तंडुलों के मध्य सुंदर और तंडुल क्षेपे हैं, सो सुंदर मिले हुये तंडुलों का भी भोजन इस कुमार ने आज अरुचि से किया है, इस सुकुमाल की वार्ता के श्रवण मात्र से राजा वृषभांक हृदय विषे, अत्यंत अचरजवान भया, और सेठानीने जो रत्न आभरण मनोग्य वस्त्र भेट किये तिस कर के सुकुमाल की प्रतिष्ठा कर और समीचीन श्लाघा योग्य वचनों से प्रशंसा कर और यह अवंती सुकुमाल है ऐसा और दूजा नाम सत्पुरुषों के मध्य प्रसिद्ध कर राजा वृषभांक अत्यंत आनंद सहित अपने राजमंदिर को गया ॥

अथानन्तर–तीन जगत विषे विख्यात है कीर्ति जिस की ऐसा अवंती सुकुमाल पुण्य के उदय से परम मनोहर भोग भोगता तिस सर्वतोभद्र महल ही विषे सुख से तिष्ठता भया, इस भांत पुण्य के उदय से यहां अनुपम परम संपदा को पाय कर सुरेंद्रदत्त, सेठ का पुत्र यह अवंती सुकु-

माल दुःख रहित अनुपम सारभूत महान् सुखों को और मनोहर दिव्य भोगोपभोगों को भोगे है, कैसा है अवंती सुकुमाल ? बड़े बड़े राजादिकों करके पूजनीक प्रशंसा योग्य है, ऐसे जान कर विभव सुख के अर्थ निपुण ज्ञानी जन हो, तुम यहां अपनी शक्ति प्रमाण मन बचन काय की शुद्धता कर बड़े यत्न से निरंतर सर्वज्ञ भाषित परम धर्म का सेवन करो, जिन धर्म को सेवन कर ज्ञानी पुरुष तीन जगत विषे सारभूत सुखों को पाय कर तीर्थंकरादिकों के परम कल्याण को पावें हैं, और क्रम से अनुपम अविनाशी सुखों की खान ऐसा जो निर्वाण पद उसको पावे हैं ॥

इत्याचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ उस की देश भाषामय वचनिका विषे सुकुमाल की उत्पत्ति और सुखानुभव का है वर्णन जिस में ऐसा सप्तम सर्ग समाप्त भया ॥



अथ आठवां अध्याय

(सुकुमाल का तप कर के सर्वार्थसिद्धि में गमन करना)

चौपाई--तीन जगतपति पूज्य अनूप। श्रीमत तीन जगत गुरु भूप ॥
तीन भुवनपति सेवत पाय। प्रणामूं परम इष्ट शिर नाय ॥

अथानंतर--एक दिन इस सुकुमाल का मामा धर्मात्मा जगत का हितकारी अवधि ज्ञानी यशोभद्र नामा महामुनि अपने अवधि ज्ञान कर पुण्यवान् सुकुमाल की अत्यंत अल्प आयु जान पूर्व भव से आया जो संबंध उस के स्नेह कर के ऐसे चिंतन करते भये, अहो इस सुकुमाल की अति दुर्लभ सपूर्ण आयु तो धर्म के सेवन से रहित ऐसे ही गई, और तप धर्म का कारण किंचित अति अल्प आयु अवशेष रही है, और अब उसके घर विषे सकल संयमी का गमन भी नहीं पाइये है इसलिये और कोई सांचा उपायकर उस सुकुमाल को संयम दीक्षा दूंगा, इस भांत विचार कर यशोभद्र नामा मुनि उस सुकुमाल के संबोधन के निमित्त चतुर्मास संबंधी भले योग के ग्रहण के शुभ दिन विषे

सुकुमाल के निकट उपवन के मध्य शोभायमान उत्तंगत्रिजगद्वंद्य ऐसा चैत्यालय विषे आये, उस ही समय बनपाल जाय कर सुकुमाल की माता से ऐसे कही, हे मात ! उपवन के चैत्यालय विषे योगी राज आये हैं, यह बचन माली के सुन कर उस जिनालय विषे शीघ्र ही जाय वहां पुण्य रूप अर्हंत देव के प्रतिबिम्बों का और अपना भाई यशोभद्र मुनिराज का पूजन कर, प्रणाम कर वह यशोभद्रा सेठानी ऐसे कहती भई, हे नाथ, यहां मेरे प्राण समान एक ही पुत्र है सो तुम्हारे बचन श्रवणमात्र कर के ही तुरत संयम ग्रहण करेगा, तब मरण का कारण आर्तध्यान मेरे अवश्य होयगा, ऐसे जान हे दया निधान ! मुझ पर दयाकर यहां से और स्थान प्रति शीघ्र ही जावो, तब मुनिराज ने ऐसे कही, हे भद्रे ! आज योग का दिन वर्ते है, इस लिये हमें कोई भी स्थानक गमन करने योग्य नहीं, कैसे हैं हम ? जीवों की दया ही है अर्थ कहिये प्रयोजन जिन के उस से चतुर्मास के योग कर यहां ही तिष्ठूं हूं इसमें और तरह नहीं, ऐसे कह कर शीघ्रही अंतरंग वहिरंग उपाधि सहित देह का ममत्व का त्याग कर सर्वत्र हा समतारूप हैं भाव जिनके ऐसे यशोभद्र मुनिराज सूकेठूठ समान अडिग होय ध्यान का अवलंबनकर कायोत्सर्गकर सहित खडे तिष्ठे उस जिन मंदिर विषेहीध्रमं ध्यानकर आत्मतत्वके विचार से कायोत्सर्ग सहित चार महीने व्यतीत करे, सो धीर बुद्धि यशोभद्र मुनिकार्तिक शुदि १५के दिन रात्री के चौथे पहर चतुर्मासकीक्रियाकर योगका त्याग किया, उस समय अवधि ज्ञानरूप नेत्रकर सुकुमालको

निद्रा रहित जान उसके संबोधन के अर्थ वह यशोभद्रमुनिराज ने अमृत समान मधुरबाणी कर समस्त त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति का वर्णन करने का प्रारम्भ किया, उस पीछे प्रथम ही वैराग्य के निमित्त अधोलोक का वर्णन कर उस पीछे मध्य लोक का कथन कर अनंतर स्वर्गों का वर्णन कर फिर अच्युत स्वर्ग विषे पद्मगुल्म विमान में पद्मनाभ देव की बड़ी विभूति संपदाका मधुरवाणी करके वर्णन करने को वह यशोभद्र मुनिराज उद्यमी भये, तब उस पद्मनाभ देव की विभूति संपदा के श्रवण मात्र से वह अवन्ती सुकुमाल जाति स्मरण को प्राप्त भया, सो उस जाति स्मरण से अपने समस्त पूर्व भव जान कर और संसार शरीर भोग सुखों विषे परम वैराग्य को पाय कर अत्यंत विरक्त भया, सुकुमाल इस भांत चितवन करता भया, अहो जो मेरा जीव अनुपम परम रमणीक स्वर्ग संबंधी भोग सुख सागरों पर्यंत चिरकाल भोगें। तिन करके भी तृप्ति को नहीं प्राप्त भया, सो, अब मेरा जीव दुःख से मिले जो निन्दनीक पराधीन और शरीरके पीड़ाके उपजावन हारे ऐसे मनुष्य पर्यायके भोग सुख, तिन कर कहां तृप्तिको प्राप्त होयहै ? भावार्थ-तृप्तिको नहीं प्राप्त होय है, कदा काल दैवयोग से इन्धन कर अग्नि तृप्त को प्राप्त होय, अथवा नदी के प्रवाह कर समुद्र तृप्ति होय, और धन संग्रह कर लोभ शांति होय तो होय, परन्तु यह आत्मा, अनन्त जन्म कर भोगे जो त्रैलोक्य संबधी नाना प्रकार के मनोहर विषय सुख, तिन कर किसी काल विषे भी तृप्ति नही भये, इस से जे अत्यंत कामी पुरुष सुखों कर तृप्ति

तपश्चरण के अर्थ उद्यमी ऐसा बुद्धिमान् सुकुमाल महल से निकलने का उपाय देखता हुआ एक वस्त्रों का वींटा (गठडी) देखता भया उस में से वस्त्रों को खैंच परस्पर एक एक वस्त्र को रज्जू (रस्सी) समान दृढ़ बांध महल के थंभ से दृढ़ बंधन कर, फिर तिस वस्त्र को लुबाय भूमि पर्यंत लम्बा क्षेपण कर उसे पकड़ कर पुण्य के उदय से पृथ्वी विषे उतर यशोभद्र मुनिराज के समीप गया, तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड नमस्कार कर आनन्द सहित सुकुमाल कुमार श्री मुनिराज को ऐसे कहता भया, हे भगवन्, इस लोक विषे विषयासक्ति पनेकर के जे दिन गये वह संयम के आचरण बिना वृथा ही गये। अब आपकी कृपा कर आपके बचन रूप अमृत के पान से मोह रूप दुर्विष का वमन कर आज मैं अत्यंत सचेत भया हूं। इस से अब ही दया कर मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ मुझे भगवती दीक्षा देवो, कैसी है दीक्षा ? समस्त सुखों की खान है और मुक्ति की उपजावन हारी है। तब यशोभद्र मुनिराज बोले, हे भद्र, तैंने बहुत भला विचार किया, क्योंकि तेरी आयु सिर्फ तीन दिन प्रमाण बाकी रही है, तब सुबुद्धि सुकुमाल ने बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रह का और चार प्रकार आहार का मन वचन काय की शुद्धता से त्याग कर यशोभद्र गुरु के बचन से शीघ्र ही जिनमुद्रा ग्रहण करी। प्रायोग गमन संन्यास सहित ध्यान की सिद्धि के अर्थ धर्म ध्यान का अवलंबन कर वन के मध्य गमन करता भया, वहां भयानक निर्जन प्रदेश विषे जाय देह से ममत्व का त्याग कर पृथ्वी विषे एक पार्श्व से शरीर को

निश्चल स्थापन कर धर्म ध्यान से समाधि मरण के अर्थ महा प्रवीण सुकुमाल मुनिराज प्रायोग गमन नामा संन्यास को अंगीकार करता भया । भावार्थः—संन्यास के तीन भेद हैं, भक्ति प्रत्याख्यान, इङ्गिरी, प्रायोग गमन, तहां चतुर्विध आहार का त्याग तो तीनों ही विषे होय है, और भक्ति प्रत्याख्यान संन्यास विषे स्वपर कृत देह का उपचार है अर्थात् आप और दूसरे दोनों टहल कर सक्ते हैं और इगिरी विषे स्वकृत ही उपचार है (अपनी टहल आप ही करसक्ता है दूसरा नहीं) परकृत नहींहै, और प्रायोग गमन विषे स्वपर कृत दोनों ही उपचार नहीं है अपने शरीर की टहल न आप कर सकता है न दूसरा, जैसा का तैसा रहे। सो सुकुमाल मुनि ने प्रायोग गमन संन्यास अंगीकार किया। और यशोभद्र मुनिराज भी तिस जिन मंदिर से निकस कर संक्लेश परिणामों में आकुलता की हानि के अर्थ कोई और जिन मंदिर विषे जाय तिष्ठे। कैसे हैं यशोभद्र मुनि ? अत्यंत विशुद्ध है बुद्धि जिनकी। अब यह तो कथन यहां ही रहा, अब आगे और कथन सुनो, वह सुकुमाल की वत्तीस स्त्रियां सुकुमाल को नहीं देख कर शोककर आकुलभई हुई शीघ्र ही यशोभद्रा के निकट आय वत्तीस सुन्दरी गद्गद बाणाकर ऐसे कहती भई—हे मात हम बत्तीस वनिताओं को प्राण वल्लभ तेरा पुत्र आज नहीं दीखे है, सो नहीं जानिये है वह धर्मात्मा कहां गया इस भांत उन सुकुमाल की स्त्रियों के वचन सुन कर बड़े शोक का भार कर शीघ्र ही यशोभद्रा मूर्छा को प्राप्त भई,

सो मानो निश्चल जिनवानी ही है, और उसी समय सकल स्वजन परजन हाहाकार शब्द करते भये, और शोक कर पीडित सुकुमाल की समस्त वनिता बडा रुदन करती भई, उस पीछे अपने अपने बंधुजनों कर शीतोपचारादिकों से सहज सहज कहिये मंद मंद धीरे धीरे चेतना को पाय कर यशोभद्रा सुकुमाल के हेरने (ढूंढने) को उद्यमी भई, परिवार सहित शोक कर पीडित वह यशोभद्रा यहां वहां अपने पुत्रको देखती हुई जिस वस्त्र माला से सुकुमाल महल से उतरा था उस वस्त्र को देखती भई । तब सुकुमाल की माता यशोभद्रा उस वस्त्र मालाकर के चित्त विषे अपने पुत्र का गमन जान शीघ्रही श्रीजिनेंद्र के मंदिर गई, वहां उस यशोभद्र मुनिराज को भी नहीं देख करके उसही समय प्रकट यह निश्चय किया जो इस वस्त्रमाला का उपाय कर और यहां चतुर्मास के योग धारण के उपाय कर निश्चय से मे पुत्र को यशोभद्र मुनि ही लेगया है, उस पीछे परमशोक कर व्याकुल ऐसी वह यशोभद्रा समस्त बंधुजनों के सहित बडे आग्रह से भूतल विषे अतिशय पने कर सुकुमाल को हेरने लगी, और वृषभांक नृप आदि समस्त राजलोक और समस्त पुरीवासी लोक सुकुमाल के हेरने को प्रवृत्त हुए २ अपने घर से वन विषे गये, यह राजादिक वा यशोभद्रादिक बडे यत्न से वन विषे निरंतर सुकुमाल को हेरते हुए जिस गूढ प्रदेश विषे सुकुमाल मुनि प्रायोग गमन संन्यास धार तिष्ठे था, उस उज्जयिनी पुरी विषे सुकुमाल का शोकादि करके समस्त पुरवासी

लोगों ने भोजन नहीं किया, और पशुओं ने घास नहीं खाया और पक्षियों ने चंगा नहीं चुगा, उस समय सुकुमालकी माताके और बंधुजनोंके और सुकुमाल की बत्तीसों वनिताओं के जो दुःसह आतापकारी तीव्रशोक भया उसके वर्णन करने को कौन समर्थ है? भावार्थः—कोई भी समर्थ नहीं ॥

अथानंतर—आगे वह सुकुमाल मुनि भी निश्चल निर्मल परिणामों सहित महा प्रवीण निज और परकृत उपचार की बांछा रहित अशुभ कर्म के क्षयको उद्यमी सम्यगदर्शन सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तप इनचार आराधनाओंविषे तल्लीन शुद्ध भावना विषे लगायाहैचित्तजाने स्नेह रहित निद्रा रहित धर्म बुद्धि धर्म ध्यानका जब लग चिंतवन करे था तब लग वह पूर्व भवकी भौजाई अग्नि भूत ब्राह्मण की स्त्री सोमदत्ता जिस के मुख पर सुकुमाल के जीव ने वायुभूत के भव में लात मारीथी(दईथी)उसने असमर्थपने करके इसका पाद भखनेका निदान कियाथा,सोसोमदत्ता संसार रूप वन विषे त्रिस्थावर की अनेक योनि में चिरकाल भ्रमण कर भयं रूप है आत्मा जिसका, पराधीन सर्व ऋतु के दुःख कर पीडित पाप कर्मके उदय कर उसही वन विषे स्यालनी(गीदड़ी)भई,सो वन विषे आगमनके अवसर सुकुमालके कोमल पावोंसे भूतल विषे रुधिरकी धारा पडती गई थी उसे आस्वादन करती चाटती थकी आय कर निश्चल ध्यानारूढ सुकुमाल मुनि को देखती भई। तब पूर्व वैर संबंधी कोप कर निदान वैर के देखते महा क्रोधायमान होयकर वह स्यालनी स्वयमेव सुकुमाल के दाहिने

पैरको खाने लगी और उस स्यालनी की पिल्ली, बच्चा क्षुधातुर उस स्यालनी के साथ ही सुकुमाल मुनि का बांमा पांवखाने को मुख से उसही समय प्रारम्भ किया ॥

अथ श्री सुकुमाल मुनि बारह भावना भावे हैं।

अथानंतर–उन श्रीसुकुमाल मुनिके उन दोनों स्यालनियोंकेअतिस्तोक स्तोक भक्षण करने से अत्यंत कोमल अंग विषे वडी वेदना भई। उस समय इस वेदना के जीतने के अर्थ और परम वैराग्य की वृद्धि के अर्थ, उन धीर बीर श्रीसुकुमाल मुनिने अपने हृदय विषे बारहभावना के चिन्तन का प्रारंभ किया। तिन के नाम सुनो, प्रथम अनित्य भावना, दूजी अशरण भावना, तीजी संसार भावना, चौथी एकत्व भावना, पंचमी अन्यत्व भावना, छठी अशुचि भावना, सातमी आश्रव भावना, आठवीं संवर भावना, नवमी निर्जरा भावना, उस पीछे दशमी लोक भावना, ग्यारमी बोध दुर्लभ भावना, और बारवीं धर्म भावना, यह बारह भावना संवेग की उपजावन हारी उपसर्ग के विजय के अर्थ चिन्तवन करते भये ॥

१ अथानंतर–श्रीसुकुमाल महामुनि गिदडी करके पैर भक्षण करनेकी परीषह सहते हुए। तहां प्रथमही अनित्य भावनाका चितवन इस प्रकार करे हैंकि यह देह काल रूप वैरी से क्षण मात्र मेंविध्वंसित

हो जायगी और यह यौवन बिजली समान क्षण भंगुर है, और समस्त भोग संपदा बादल समान क्षण स्थाई हैं, जैसे इस संसार विषे भ्रमण करते पूर्वतन मेरे अनंतानंत शरीर विलाय गये, तैसे यहां यह भी शरीर कर्मरूप वैरीकी हानिके अर्थ जाओ, इस देह के जाने में मेरा कुछ भी विगाड़ नहीं, मेरुसमानप्रचुर पाप कर्मके वसभया मैं नर्क विषे उपजा, वहां नारकियोंने अनंतानंत तिल तिल प्रमाण मेरी देहकेखण्ड खण्ड किये। और तिर्यंच गति विषे भ्रमते मेरे अनंत शरीरोंको निर्दई सिंह व्याघ्रादि क्रूर जीवोंने अनंत बारभक्षण किया, अब यह मेरा शरीर यहां कर्मों के नाश के अर्थ जाए है, तो इस उपसर्गके विजय होते हुए मुझे परम लाभहै॥ यहां ग्रंथ रचिता आचार्य कहेहैंकि संसार रूप वैरी से भयभीत जे ज्ञानी जीव हैं उन करके दुष्करतप किया जाए है, और ज्ञानी जीव उप सर्गके विजय को परमतपकहेहैं, और तीन लोक विषे जीवों के शुभ कर्म से उपजे जो राज्य भोग शरीर दारादिक और संपदा सुख धनादिक वस्तु कुछ एक सुंदर दीखे है, सो सर्व वस्तु गिणता के दिनों में काल रूप अग्नि से खाककी राशि हो जायगी, इस भांत समस्त जगत को विनाशी जान कर, हे ज्ञानी पुरुष हो, सुखकी प्राप्ति के अर्थ उग्रोग्र तप के समुदायकर के अविनाशी परम पदका साधन करो, इति अनित्यभावना ॥

२ श्री सुकुमाल मुनि अशरण भावनाका चिंतवन करें हैं कि जैसे मृगारि(सिंह)करके पकडे गये वन विषे मृगको कोई शरण नहीं तैसेही मनुष्योंको जन्म मरणके दुःखों से वचाने को कोई भी रक्षक नहीं है,

जब इस जीव को यमराज आय कर पकडे हैं तब इंद्रादिक देव और समस्त विद्याधर चक्रवर्त्यादिक मनुष्य क्षण मात्र भी राखने को समर्थ नहीं हैं, संसार रूप बन विषे भ्रमण करते अशरण पने से मैंने छेदन भेदनादिक अत्यंत तीव्र कोटिक दुःख भोगे हैं अब यहां यह पशु स्यालनी मेरे पांवको भक्षण करे है सो अशुभ कर्म की हानि के अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ, और संसार के बिनाश के अर्थ यह बहुत भला काज भया है,और तरह नहीं, जहां कोई भी रक्षक नहीं ऐसे इन तीनों लोकों विषे संसारी जीवों के रक्षक पंचपरम गुरु ही हैं और केवल प्रणीत धर्म रक्षक है, जिस से इस लोक विषे यह पंचपरमेष्ठी मुक्ति के दायक सत्पुरुषोंका उपकार करने का समर्थ हैं इन सिवाय और ब्रह्मा, विष्णु महेशादिक तथा देवी दिहाडी, क्षेत्र पाल, भैरवादिक मंत्र तंत्रादिक कोई भी उपकार करने को समर्थ नहीं, उस से इस से इस दुर्द्धर उपसर्ग विषे अशुभ कर्मके विजयकी सिद्धि के अर्थ और मुक्तिके अर्थ मेरे अर्हंतादि पंच परमेष्ठी तथा जिन धर्म ही शरणाधार होऊ । यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि इस भांत तीन लोक को शरण रहित जान कर हे चतुर विचारज्ञ पुरुष हो, तप संयम कर शाश्वत नर्वाण के शरणे जाओ ॥ इति अशरण भावना ॥

३ संसार भावना का श्री सुकुमाल मुनि इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि यह आदि अंत रहित पाप रूप दुःखोंका समुद्र महा भयानक पंडितों करके निन्दा योग्य ऐसा पंच प्रकार संसार

सत्पुरुषों के स्थिरता के अर्थ कैसे होय ? इस अनादि संसार विषे भ्रमण करते नरक तिर्यंच दुर्गति विषें समस्त जीवों करके चिरकाल पर्यंत मैंने अनंती वेदना पाई, इस स्यालनी के भक्षणदिक से उत्पन्न भया, ऐसा यह दुःख मेरे कितनाक है अर्थात् कुछ भी नहीं, यह दुःखतो अशुभ कर्म के नाश से मेरे निःसंदेह मुक्ति के सुख के अर्थ है, इस भांत बारंबार संसार के विचित्रपने का चिंतवन करता ऐसा वह सुकुमाल मुनि मेरुगिर समान अत्यंत निश्चलांग कहियेनिष्कंप भया। यहां ग्रंथ रचिता आचार्य कहे हैं कि तुम सुख के अर्थ ज्ञानी पुरुष हो, अनंत दुखों कर परिपूर्ण संसार के स्वरूप को जान कर इस देह से स्नेह का त्याग कर, दर्शन, ज्ञान चारित्रादिक के आचरण में अनंत सुखों की खान ऐसे मोक्ष का साधन करो, इति संसार भावना ॥

४ श्री सुकुमाल मुनिचौथो एकत्वभावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि जन्म, जरा, मरणादिक के दुखों कर रहित और एकाकी निर्मल अमूर्तिक चिरंजीव ऐसा मैं आत्माराम निश्चय कर अनंत गुणों का भाजन हूं यह दोनों (स्यालनी और स्यालनो की पिल्लो) इस दुर्गंधित कलेवर को भले ही खावो, मेरे अमूर्तिक निजस्वरूप को नहीं खाय हैं। इस भांत विचार वह सुकुमाल मुनि रंच मात्र भी कलुष परिणाम नहीं करे है। यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि हे ज्ञानी पंडित जन हो, जन्म जरामरण रोग शोक दुःखादिकों विषे अपना एकाकीपना देखकर मुक्ति के अर्थ एक चिदानंद

आत्मा ही का चितवन करो ॥ इति एकत्व भावना ॥

५ श्री सुकुमाल मुनि पांचमी अन्यत्व भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं। कि यह घिनावना क्षणभंगुर शरीर मेरे से जुदा है और निश्चय से मन वचन तथा सकल इंद्रियां भी मेरे से जुदी हैं। यह दोनों पशु केवल काय को भखे हैं और काय रहित मेरे आत्माको नहीं भखे हैं। इससे मेरे दुःख कहां से होय? ऐसे वह मुनि हृदय विषे चिंतवन करे हैं। यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि इस भांत शरीरादिक से अपना अन्यपणा जान कर भोअन्यत्व वेदी भव्य जीव हो, इस अशुचि अंग से जुदा कर मुक्तिके अर्थ एक अपने निज स्वरूप का ध्यान करो ॥ इति अन्यत्व भावना ॥

६ श्री सुकुमाल मुनि छठी अशुचि भावना का चिन्तवन इस प्रकार करे हैं। कि क्षुधा तृषा रूप अग्नि का घर और काम क्रोध रोग रूप नागों कर व्याकुल सप्तधातु उपधातु मलादिकोंकरकेपरिपूर्ण ऐसी यह काय ज्ञानी पुरुषोंकर कहा सराहिये है ? अर्थात् जैसे जिस घर में मूत्रादिक भरे और जिस में सांप गोहरे न्यौल क्रीडा करें, और जिस के चारों ओर अग्नि प्रज्वलित भई उस घर की पंडित जन सराहना नहीं करें वैसे इस अशुचि कलेवर की ज्ञानी जन सराहना नहीं करे हैं। अहो यह स्यालनी बंदीगृह समान मेरे अशुभ अंगको भखे है और इस अंग से मुझे मुक्त कहिये रहित करे है सो यह ही मेरे शिवदायक परम लाभ है, इत्यादिक भेद विज्ञान के चिंतवन कर, अति धीर वीर वह सुकुमाल मुनि

स्यालनीकर के पावों को खाते संतेभी मन वचनकायकी शुद्धताकर रंच मात्र भी क्लेश को नहीं प्राप्त होय है। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो,सर्व प्रकार इस काय को अशुचिमय जान कर संयम विषे वा महा घोर उग्रोग्र तप विषे लगाय कर परम पवित्र मोक्षका साधन करो॥ इतिअशुचि भावना॥

७ श्री सुकुमाल मुनि सातमी आश्रव भावना का इस प्रकार चिनवन करें हैं कि—यह संसारीजीव पांच मिथ्यात्व, बारह अव्रत,पच्चीसकषाय, पंद्रह योग,इन सत्तावन प्रत्ययन कर के संचय रूप भये ऐसे जे अशुभ कर्म के आश्रव, तिन कर छिद्र सहित नावकी नाईं संसार समुद्र विषे डूबे हैं, जिस भव्य जीवने तप, ध्यान और क्षमादिकों कर कर्माश्रवका निरोध किया, उस भव्य जीव के मनो वांछित संयम, सेवर, निर्जरा और मोक्ष सिद्ध भये, और उपसर्ग के दुःख कर जो मेरा मनआज मलीन होय तो मलीन मन कर के पाप ही का आश्रव होय, और फिर उस पापाश्रव से अनंत संसार होय, और उस संसार विषे बडे बडे पंडितों से भी नहीं कहा जाय ऐसा अत्यंत तीव्र घोर दुःख है। ऐसा विचार कर वह सुकुमाल मुनि मोक्ष का अर्थी उत्कट कष्टको सहे है।यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत आश्रव के महान दोष जान भोज्ञानी पंडित जन हो, मन वचन काय से कर्म रूप वैरी का विरोध कर आश्रव का अवरोध करो॥ इति आश्रव भावना॥

८ श्री सुकुमाल मुनि सम्वर भावना का इस प्रकार चिन्तवन करे हैं कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान

चारित्र, तप कर और मन वचन काय के योग को निरोध कर, और धर्म शुक्ल ध्यान कर जो महंत पुरुष के कर्माश्रवका निरोध होय सो संवर है। कैसा है संवर ? अनंत गुण रत्नों का समुद्र है, और संवर कर सहित किये हुये अल्प तप व्रतादिक भी भव्य जीवों के सर्व काल विषे महान फल को फलें हैं, और संवर बिना घोर तप व्रतादिक कुछ भी फलदाई नहीं, उलटे अशुभ कर्म के बंध के कारण होय हैं, और ऐसा दुस्सह घोर उपसर्ग होते हुए धीर वीर पुरुष एकाग्र चित्त कर शुभ ध्यानोंसे जो संवर करे है सो सवर सकल अर्थ की सिद्धि का दायक है, और संसार के कारण जे घोर पाप रूप वैरी उनका घात करे है, ऐसे विचार कर संवर के अर्थ ऐसा वह सुकुमाल मुनि आत्मध्यान से रंचमात्र भी नहीं चलायमान होय है। यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत संवर से प्रकट भये जे ऐसे सारभूत गुण उन को जानकर भो भव्य जन हो, उत्तम अनुपम गुणों की प्राप्ति के अर्थ मन वचन काय के निग्रह से सदा-कालसंवर करो ॥ इति संवर भावना ॥

९ श्रीसुकुमाल मुनि नवमी निर्जरा भावना का चितवन इस प्रकार करे हैं कि सर्वज्ञ देवने सविपाक और अविपाक के भेदकर निर्जरा दो प्रकार की कहीहैं, सो सविपाक निर्जरा तो सर्व संसारी जीवों के होय है, और अविपाक निर्जरा ध्यानी मुनिराजों के ही होय है, वीतरागी आत्मध्यानी मुनिराजों करके उग्रोग्र तपश्चरण कर संवर सहित जो निर्जरा यहां करिये है सो अविपाक निर्जरा है,

कैसी है अविपाक निर्जरा ? दया कहिये आत्मा की रक्षा, और मुक्ति कहिये समस्त कर्मों का अभाव आदि गुण रत्नों की खान है, और कर्मों को स्वयमेव उदय में लाकर क्षय करनेहारी है। ऐसी अविपाक निर्जरा सत्पुरुषों के सदाकाल होय है। अथवा संवर सहित मुक्ति के अर्थ सविपाक निर्जरा भी करिये है। भावार्थः-संवर सहित दोनों ही निर्जरा मुक्ति की कारण हैं, अहो यह सविपाक निर्जरा अपने कर्मके उदयसे स्वयमेव मेरे भाग्य से उदय भई, कैसी है सविपाक निर्जरा ? पूर्वकाल में संचय किये जो अशुभ कर्म रूप वैरी तिनको नाश करन हारी है, वह निर्जरा का अर्थ सुकुमाल मुनि इस भांत विचार समस्त मन वांछित का दायक ऐसी परीषह कर सहित मेरु समान निश्चल भया। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो, सार भूत मुक्ति आदि समस्त गुणों की उपजावन हारी ऐसी निर्जरा को जान कर मोक्ष सुख के अर्थ सुकुमाल मुनि की तरह उग्रोग्र तपश्चरण कर निरंतर अविपाक निर्जरा का उपाय करो॥ इति निर्जरा भावना॥

१० श्रीसुकुमाल मुनि लोक भावना का चितवन इस प्रकार करे हैं कि-अधोलोक, मध्य लोक, उर्ध्व लोकके भेदकर तीन प्रकार यह लोक जिनेंद्र देव ने अकृत्रिम और शाश्वत कहा है, कैसा है लोक ? दुःख और सुख और उभय कहिये सुख दुःख दोनोंकर आश्रित है, तहां अधो लोक विषे सात नरक धरामें तो सर्वथा महान घोर दुःखही है, सुख का लेश भी नहीं, और मध्य लोक विषे किसी जगह सुख

है, किसी जगह दुख है, किसी जगह सुख दुःख दोनों मिश्रित हैं, और इस लोक के उर्ध्वभाग विषे स्वर्गादिकों में सुख है, और तीन लोक के शिखर पर नित्य अविनाशी अनंत गुण और अनंत सुखों का सागर ऐसा शिवालय है। और परमार्थ जो शुद्ध निश्चय उस कर ज्ञानी जीवों के चित्त विषे मोक्ष विना यह समस्त लोक दुखों का भाजन ही भासे है, और इस लोक विषे अधोगति में तथा तिर्यंच की बासठ लाख योनि विषे कर्मों के वस से मैंने छेदन भेदनादि संबंधी महान घोर दुःख भोगे सो यह दुःख कितना है ? कुछ भी नहीं, इस दुःख को कौनसा धीरवीर दुःख मानें ? कोई भी ज्ञानी दुख नहीं मानें। ऐसे विचार कर वह सुकुमाल मुनि आकुलता रहित ध्यान विषे एकाग्रचित्त भया॥ यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत परमागम से इस लोक का दुःखदायी जान कर हे भव्यजीव हो, यम नियमादिकों कर लोक के शिखर पर शिवालय का साधन करो। इति लोकभावना॥

११ श्रीसुकुमाल मुनि ग्यारवां बोधि दुर्लभ भावना को इस प्रकार भावते भये कि—चार गति चौरासी लाख योनि रूप संसार विषे भ्रमण करते ऐसे मिथ्या दृष्टि पापी जीवों को निश्चयकर यह मनुष्य जन्म का लाभ निधि समान अति दुर्लभ है। और इस मनुष्य जन्मके भाल से भी आर्य खंड का लाभ दुर्लभ है, और आर्य खंड के लाभ से भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य संबंधी उत्तम कुल विषे जन्म का लाभ महान् दुर्लभ है, और उच्च कुल विषे जन्म पाने से भी दीर्घ आयु का पाना बहुत

दुर्लभ हैं, और दीर्घ आयु के लाभ से भी निर्मल सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धि का पावना अत्यंत दुर्लभ है, और निर्मल बुद्धि के लाभ से भी पांचों इंद्रियों की परिपूर्ण सामग्री का पाना महान् कठिन है, और इन समस्त सामग्री का लाभ होते हुए भी सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक् तप और वीतरागी निर्ग्रंथ गुरु का सेवन आदि सामग्री का लाभ निधि समान उत्तरोत्तर अति दुर्लभ है, इत्यादिक उत्तरोत्तर दुर्लभ पने से अत्यंत दुष्प्राप्य ऐसी जो सम्यग्दर्शनादिक की एकता रूप बोधि, उसे पाय कर जो भव्य जीव बड़े यत्न से मोक्ष का साधन करे हैं उनही भव्य जीवों के यहां बोधि का लाभ सफल होय है, और मनुष्य जन्म का लाभ होते हुए भी जो मूर्ख मिथ्या दृष्टि पापी जीव सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रादिक विषे प्रमाद करे हैं सो पापी जीव संसार रूप गहन अटवी विषे अनंतानंत काल पर्यंत परिभ्रमण करे है, कैसी है बोधि ? परलोक विषे मनोवांछित अर्थ की साधन हारी है,अब इस घोर उपद्रव से जो मैं सम्यग् दर्शनादि गुणोंसे गिर(ड) जांऊ तो आगामी काल में मेरा दीर्घ संसार विषे परिभ्रमण होय । ऐसे विचार वह सुकुमाल मुनि मेरु समान अचल होता भया । यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्य जीव हो, मनुष्य पर्याय सम्यग् दर्शन आदि मोक्ष मार्ग की सामग्री पाय कर तप योगादिकों से निर्वाण का साधन करो ॥ इति बोधिदुर्लभ भावना ॥

१२ श्रीसुकुमाल मुनि धर्म भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि–जो अपार संसार के

चारित्र, तप कर और मन बचन काय के योग को निरोध कर, और धर्म शुक्ल ध्यान कर जो महंत पुरुष के कर्माश्रवका निरोध होय सो संवर है। कैसा है संवर ? अनंत गुण रत्नों का समुद्र है, और संवर कर सहित किये हुये अल्प तप व्रतादिक भी भव्य जीवों के सर्व काल विषे महान फल को फलें हैं, और संवर बिना घोर तप व्रतादिक कुछ भी फलदाई नहीं, उलटे अशुभ कर्म के बंध के कारण होय हैं, और ऐसा दुस्सह घोर उपसर्ग होते हुए धीर बीर पुरुष एकाग्र चित्त कर शुभ ध्यानोंसे जो संवर करे हैं सो संवर सकल अर्थ की सिद्धि का दायक है, और संसार के कारण जे घोर पाप रूप वैरी उनका घात करे हैं, ऐसे विचार कर संवर के अर्थ ऐसा वह सुकुमाल मुनि आत्मध्यान से रंचमात्र भी नहीं चलायमान होय है। यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत संवर से प्रकट भये जे ऐसे सारभूत गुण उन को जानकर भो भव्य जन हो, उत्तम अनुपम गुणों की प्राप्ति के अर्थ मन बचन काय के निग्रह से सदाकाल संवर करो ॥ इति संवर भावना ॥

९ श्रीसुकुमाल मुनि नवमी निर्जरा भावना का चिंतवन इस प्रकार करे हैं कि सर्वज्ञ देवने सविपाक और अविपाक के भेदकर निर्जरा दो प्रकार की कहीहैं, सो सविपाक निर्जरा तो सर्व संसारी जीवों के होय है, और अविपाक निर्जरा ध्यानी मुनिराजों के ही होय है, वीतरागी आत्मध्यानी मुनिराजों करके उग्रोग्र तपश्चरण कर संवर सहित जो निर्जरा यहां करिये है सो अविपाक निर्जरा है,

कैसी है अविपाक निर्जरा ? [दया कहिये] आत्मा की रक्षा, और मुक्ति कहिये समस्त कर्मों का अभाव आदि गुण रत्नों की खान है, और कर्मों को स्वयमेव उदय में लाकर क्षय करनेहारी है। ऐसी अविपाक निर्जरा सत् पुरुषों के सदाकाल होय है। अथवा संवर सहित मुक्ति के अर्थ सविपाक निर्जरा भी करिये है। भावार्थः—संवर सहित दानों ही निर्जरा मुक्ति की कारण है, अहो यह सविपाक निर्जरा अपने कर्मके उदयसे स्वयमेव मेरे भाग्य से उदय भई, कैसी है सविपाक निर्जरा ? पूर्वकाल में संचय किये जो अशुभ कर्म रूप वैरी तिनको नाश करन हारी है, वह निर्जरा का अर्थ सुकुमाल मुनि इस भांत विचार समस्त मन वांछित का दायक ऐसी परीषह कर सहित मेरु समान निश्चल भया। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो, सार भूत मुक्ति आदि समस्त गुणों की उपजावन हारी ऐसी निर्जरा को जान कर मोक्ष सुख के अर्थ सुकुमाल मुनि की तरह उग्रोग्र तपश्चरण कर निरंतर अविपाक निर्जरा का उपाय करो॥ इति निर्जरा भावना ॥

१० श्रीसुकुमाल मुनि लोक भावना का चिंतवन इस प्रकार करे हैं कि—अधोलोक, मध्य लोक, उर्ध्व लोकके भेदकर तीन प्रकार यह लोक जिनेंद्र देव ने अकृत्रिम और शाश्वत कहा है, कैसा है लोक ? दुःख और सुख और उभय कहिये सुख दुःख दोनोंकर आश्रित है, तहां अधो लोक विषे सात नरक धरामें तो सर्वथा महान घोर दुःखही है, सुख का लेश भी नहीं, और मध्य लोक विषे किसी जगह सुख

है, किसी जगह दुख है, किसी जगह सुख दुःख दोनों मिश्रित हैं, और इस लोक के उर्ध्वभाग विषे स्वर्गादिकों में सुख है, और तीन लोक के शिखर पर नित्य अविनाशी अनंत गुण और अनंत सुखों का सागर ऐसा शिवालय है। और परमार्थ जो शुद्ध निश्चय उस कर ज्ञानी जीवों के चित्त विषे मोक्ष विना यह समस्त लोक दुखों का भाजन ही भासे है, और इस लोक विषे अधोगति में तथा तिर्यंच की बासठ लाख योनि विषे कर्मों के बस से मैंने छेदन भेदनादि संबंधी महान घोर दुःख भोगे सो यह दुःख कितना है ? कुछ भी नहीं, इस दुःख को कौनसा धीरवीर दुःख मानें ? कोई भी ज्ञानी दुख नहीं मानें। ऐसे विचार कर वह सुकुमाल मुनि आकुलता रहित ध्यान विषे एकाग्रचित्त भया॥ यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत परमागम से इस लोक का दुःखदायी जान कर हे भव्यजीव हो, यम नियमादिकों कर लोक के शिखर पर शिवालय का साधन करो। इति लोकभावना॥

११ श्रीसुकुमाल मुनि ग्यारवी बोधि दुर्लभ भावना को इस प्रकार भावते भये कि—चार गति चौरासी लाख योनि रूप संसार विषे भ्रमण करते ऐसे मिथ्या दृष्टि पापी जीवों को निश्चयकर यह मनुष्य जन्म का लाभ निधि समान अति दुर्लभ है। और इस मनुष्य जन्मके भाल से भी आर्य खंड का लाभ दुर्लभ है, और आर्य खंड के लाभ से भी क्षत्रिय,ब्राह्मण,वैश्य संबंधी उत्तम कुल विषे जन्म का लाभ महान् दुर्लभ है, और उच्च कुल विषे जन्म पाने से भी दीर्घ आयु का पाना बहुत

दुर्लभ है, और दीर्घ आयु के लाभ से भी निर्मल सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धि का पावना अत्यंत दुर्लभ है, और निर्मल बुद्धि के लाभ से भी पांचों इंद्रियों की परिपूर्ण सामग्री का पाना महान् कठिन है, और इन समस्त सामग्री का लाभ होते हुए भी सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक् तप और बीतरागी निर्ग्रंथ गुरु का सेवन आदि सामग्री का लाभ निधि समान उत्तरोत्तर अति दुर्लभ है, इत्यादि॰ उत्तरोत्तर दुर्लभ पने से अत्यंत दुष्प्राप्य ऐसी जो सम्यग्दर्शनादिक की एकता रूप बोधि, उसे पाय कर जो भव्य जीव बडे यत्न से मोक्ष का साधन करे हैं उनही भव्य जीवों के यहां बोधि का लाभ सफल होय है, और मनुष्य जन्म का लाभ होते हुए भी जो मूर्ख मिथ्या दृष्टि पापी जीव सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रादिक विषे प्रमाद करे हैं सो पापी जीव संसार रूप गहन अटवी विषे अनंतानंत काल पर्यंत परिभ्रमण करे है, कैसी है बोधि ? परलोक विषे मनोवांछित अर्थ की साधन हारी है,अब इस घोर उपद्रव से जो मैं सम्यग् दर्शनादि गुणोंसे गिर(ड) जांऊ तो आगामी काल में मेरा दीर्घ संसार विषे परिभ्रमण होय । ऐसे विचार वह सुकुमाल मुनि मेरु समान अचल होता भया । यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्य जीव हो, मनुष्य पर्याय सम्यग् दर्शन आदि मोक्ष मार्ग की सामग्री पाय कर तप योगादिकों से निर्वाण का साधन करो ॥ इति बोधिदुर्लभ भावना ॥

१२ श्रीसुकुमाल मुनि धर्म भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि–जो अपार संसार के

दुःख समुद्र से उद्धार कर संसारी जीवोंको शिवालय विषे अथवा सौधर्मादि सर्वार्थ सिद्धि पर्यंत शुभ स्थानक विषे धारण करे हैं। सो सर्वज्ञ भाषित महान् धर्म है। उसके भेद१०हैं। एक उत्तम क्षमा,२उत्तम मार्दव, ३उत्तम आर्जव, ४उत्तम सत्य, ५उत्तम शौच, ६उत्तम संयम,७उत्तम तप, ८उत्तम त्याग,९उत्तम आकिंचन्य १० उत्तम ब्रह्मचर्य। यह १०लक्षण धर्म भव्यजीवोंके परम धर्मके कारण हैं इस उत्तमक्षमादि दश लक्षण धर्म के सेवन करने से मुनिराज के महाव्रतादिक के पालन रूप परम धर्म मोक्ष का दायक होय है। और इस दश लक्षण धर्म के सेवन विना और दुर्द्धरकाय क्लेशादिक कर मोक्ष का लाभ कभी भी नहीं होय है। और तीनलोक विषे सख संपदा निवास आदि जो कुछ सुन्दर सुहावणी वस्तु दीखे हैं सो समस्त धर्म रूप कल्प वृक्षका फल है। और इस परीषह के प्राप्त होते हुए जो मेरा मन विकार पनाको प्राप्त होय तो मेरे उत्तम क्षमा धर्म कहां रहा ? ऐसे विचार सो सुकुमाल मुनि उस स्यालनी कृत उपसर्ग को समभाव से सहे हैं॥ यहां आचार्यकहे हैं कि इस भांत समस्त धर्म का फल जान कर हे धर्मात्मा भव्य जीव हो, उत्तम क्षमादि दश लक्षणों करके बडे यत्न से एक केवल सर्वज्ञभाषित धर्म ही का सेवन करो॥ इति धर्म भावना॥

सो जो भव्य जीव इन बारह अनुप्रेक्षाओं को निरंतर चिंतवन करे हैं तिन भव्य जीवों के रागादिक वैरी क्षीण होय हैं। और धर्म विषे और धर्मके फल विषे अत्यंत प्रीति बढ़े है, इस भांत जान

कर हे बुध जन हो ! अशुभ कर्म के नाश के अर्थ इन बारह शुभ भावनाओं के चित्तन विषे निरंतर चित्त करो, कैसी हैं यह बारह भावना? अनंत गुणों की उपजावन हारी हैं, ऐसे इन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन कर उस समय उस सुकुमाल के हृदय विषे तुरत ही परम वैराग्य प्रकट भया, तब इस वैराग्य भाव करके निज आत्मा को अपने देह से भिन्न जान कर वह धीर वीर सुकुमाल मुनिराज, शुद्ध आत्माको निर्विकल्प एकाग्रचित्त कर अंतरंग विषे निरंतर चितवन करता भया। और स्यालनी कृत अत्यंत तीव्र वेदना को जानता हुआ भी यह सुकुमाल मुनि उस आत्म ध्यानके प्रभाव करके चित्त विषे कदाचित् भी रंचमात्र खेद को नहीं प्राप्त होय है, उस पीछे वह धीरबुद्धि सुकुमाल मुनि स्यालनी कृत प्रचण्ड वेदना को जीत कर इसी उपसर्ग से वज्र समान अभेद्य भया, कैसा सुकुमाल मुनि? मेरु समान अचल है आकृति जिसकी, अथवा महापापिनी दुर्बल स्यालनी पिल्ली सहित प्रथम दिन विषे तो क्रम से इस सुकुमाल के गोडे तक पग खाये, और दूजे दिन जांघतक भक्षणकरी। तीजे दिन अर्द्धरात्रीके समय विषे बलात्कार सुकुमालके उदर को विदारण कर वह पापिनी स्यालनी ने अपने मुख करके उसके उदर के मध्यसे आंतडीयोंके समूह को खेंचकर आहिस्ता आहिस्ता खाने का प्रारम्भ किया, उस समय उदरके विदारण से लगाय प्राणों का अंत पर्यंत भले प्रकार चार आराधना का आराधन कर उस सुकुमाल मुनिने धर्म ध्यान विषे तल्लीन होय बहुत सावधान पने से प्रायोग गमन संन्यास मरण कर प्राणों का त्याग किया, उस पीछे आत्म ध्यान के प्रभाव से

बहुत पाप कर्मों का घातकर प्रचुर पुण्यके उदय से वह अवंती सुकुमालमहा मुनिराज सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त भये । कैसी है वह सर्वार्थसिद्धि? समस्त मनो वांछित कार्यों की सिद्धि की देने हारी है, और महा रमणीक परमपवित्र है, और शिवालय के अधोभाग विषे बारह योजन नीचे तिष्टे है और मुक्ति रूपी कामिनी की सारभूत निकट वासिनी सखी है ॥ भावार्थ–एक भवमें ही मुक्ति कामिनि से मिलावन हारा परम प्रवीण सखी है, इस भांत यह सुकुमाल पूर्व पुण्य के प्रभाव से परम अनुपम भोग संपदा को भोग कर, और राग के अभाव से विधि पूर्वक परम पुनीत भगवती दीक्षा अंगीकार कर, और स्यालनी कृत महान घोर परिषहको सहकर परम उत्कृष्ट सुखों की खान ऐसी सर्वार्थ सिद्धी का प्राप्त भये । ऐसे जान कर हे भव्यजीव हो, शिवालय के अर्थ धीरपना अंगीकार करो । ऐसा उपदेश है, और जो बाह्य अभ्यतर समस्त परिग्रहसे रहित मोक्षमार्गकेसन्मुख सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि अनेक गुणोंके भाजन समस्त परीषहरूप वैरीके जीतन हारे परमधीर वीर तीन लोकविषे पूजनीक संसार सागरके पारको प्राप्त भये ऐसे जो सुकुमालादि समस्त महामुनि, तिनकी स्तवन तिनके ही गुणानुवाद कर मैं सकलकीर्ति नामाचार्य करूं हूं । इत्याचार्य सकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ उसकी देश भाषामें वचनिका विषे सुकुमाल मुनि के स्यालनी कृत उपसर्ग को विजय, और बारह भावनाको चितवन कर सर्वार्थसिद्धि विषे गमन का है वर्णन जिसमें ऐसा अष्टम सर्ग समाप्त भया ॥

नवम अध्याय

(यशोभद्रा सेठानी आदि का तप कर स्वर्ग में जाना)

चौपाई--चार घात घातक अरहंत। वसुविधि रहित सिद्ध शिवकंत ॥
रत्नत्रयधारक सवसाध। मंगलकार नमं तह बाद ॥ १ ॥

अथानंतर–जिस समय सुकुमाल मुनि सर्वार्थ सिद्धी को पधारे उसही समय इस सुकुमाल मुनिके घोर उपसर्ग के विजय के माहात्म्य से इंद्रादिक देवन के आसन कंपायमान भये, तब इंद्रादिक देव अवधिज्ञान के बलकर के उस सुकुमाल मुनिराज का परम उत्कृष्ट मरण जानकर आश्चर्य सहित हुए हुए हर्ष कर भक्ति के अनुराग से ऐसे स्तुति करते भये, अहो, यह सुकुमाल महामुनि धीरपना कर शोभायमान, अनेक गुण रत्नों का आकार, तीनलोक विषे बंदनीय, पूजनीय, महा. ज्ञानी समस्त भव्य जीवों के अग्रेश्वर, महागुणवान् ऐसा वह मुनि अत्यंत कोमल कायका धारक था। सो ऐसे अत्यंत दुर्धर घोर उपसर्ग को समभाव से जीतता भया, इस भांत तिस धीर बीर सुकुमाल

मुनिकी परमस्तुति कर और समस्त देवों कर सहित अपने अपने वाहन पर चढे, और नाना जाति के वादित्रों के नाद कर, और जय जिनेंद्र, जय जिनेंद्र, इत्यादि घोषणा कर दिशाओंको पूर्णकरते ऐसे इंद्रादि महर्द्धिक देव हर्ष सहित पुण्य की प्राप्ति के अर्थ बड़ी विभूति कर सुकुमाल मुनि के पूजन के निमित्त महीतल विषे आये, उस बनविषे सुकुमाल मुनि के शरीर की इंद्रादिक देव बड़ी विभूति कर देवलोक संबंधी पूजन के द्रव्य कर उत्सव सहित महान् पूजाकर अपने स्थानक को गए ॥

अथानंतर–उस समय बन विषे देवों के किये जय जय आदि शब्दों और वादित्रों के परम रमणीकनाद को सुनकर वह सुकुमाल की माता सुकुमाल मुनि के तप और परीषह और परलोक गमन का वृतांत सुन समस्त कुटुंब आदि स्वपरजन सहित समस्त सज्जन पुरजन को बुलाय वह यशोभद्रा सेठानी वृषभांक नृप सहित जहां सुकुमाल का कलेवर था उस वनस्थल में गई, वहां सुकुमाल के अर्धभक्षित देह को देख कर अंतःकरण विषे शोक कर आकुल भई हुई वह यशोभद्रा दुःख कर के विव्हल वहां मूर्छाखाकर भूमि में पड़ी, और सुकुमाल की बत्तीस प्राण वल्लभा भरतार के देह के दर्शन मात्र से परम शोक को पायकर हा हा कार सहित रुदन करता भई, और समस्त बांधव भी, हाहाकार सहित रुदन करते भये, और वृषभांक नृप आदि राजा लोक और अन्य पुरवासी लोक सुकुमाल का धीरपना देखने से सुकुमाल की परम

प्रशंसा करते हुए हृदय विषे बड़े आश्चर्य को प्राप्त भये, उस पीछे वह सुकुमाल की माता यशोभद्रा स्वजन परजनों के संबोधने करके आहिस्ता आहिस्ता चेतना को पाय कर, सकल जनों से सुकुमाल की प्रशंसा सुन वह सेठानी संतुष्ट होय कर सुकुमाल के शरीर का पूजन कर अगर चंदन से उस का संस्कार करती भई, तिस पीछे जिस जिनालय विषे यशोभद्र मुनिराज तिष्ठे थे उस मंदिर विषे धर्म की सिद्धि के अर्थ समस्त बंधुजन और वृषभांक राजा सहित मुनि के पास गई। और यशोभद्र मुनिराज को प्रणाम कर हर्ष सहित कोमल वाणी कर के ऐसे पूछती भई। हे भगवन् यहां सुकुमाल के ऊपर मेरा अत्यत स्नेह कैसे भया ? सो आप कृपाकर स्नेह का कारण कहो, इस भांत यशोभद्रा के प्रश्न से वायुभूत के भव से लगाय अच्युत स्वर्ग विषे गमन पर्यंत समस्त जीवों की पूर्व भव संबंधी कथा को पूर्वोक्त प्रकार वर्णन कर और अशेष पुण्य के उदय से इन का यहां आगमन संबंधी समीचीन कथा को वह यशोभद्र मुनिराज अवधि ज्ञान से इस भांत कहते भये ॥"

अथानंतर—सुकुमाल को पूर्वभव विषे जो नागश्री का पिता नागशर्म ब्राह्मण उसका जीव देव भया था, सो तो अच्युत स्वर्गसे चयकर इंद्रदत्त सेठ और गुणवती सेठानी का सुरेंद्रदत्त नामा पुत्र, महा धर्मात्मा, विषय भोगसे अत्यंत विरक्त, महाधनवान्, राजश्रेष्ठी तेरा भर्त्तार भया, और चंपापुरी का चंद्रवाहन राजाका जीव जो देव भया था सो आरण स्वर्गसे चयकर, सर्वयशा नामा वैश्य और यशोमती नामा

स्त्री उनके मैं यशोभद्रनामा पुत्र होता भया, सो मैंने कुमार अवस्था विषे ही संसार देह भोगोंसे उदासीन श्रीगुरुके पास भगवती दीक्षा धारणकरी, समीचीन तपके बल से अवधि मन पर्यय दोही ज्ञानको प्राप्त भया, और त्रिदेवी ब्राह्मणी का जीव जो देव भया था सो अच्युत स्वर्ग से चयकर सम्यग्दर्शनके अभाव से सुकुमाल विषे अत्यंत स्नेहवती ऐसी तू मेरी बहण यशोभद्रा भई। और नागश्री का जीव पद्मनाभ देव भया था सो अच्युत स्वर्ग से चयकर यहां पुण्य के प्रभाव से जगत विषे विख्यात ऐसा धर्मात्मा सुकुमाल भया, और राजगृह नगर का राजा सुबल का जीव जो देव भयाथा सो अच्युत स्वर्ग से चय कर पुण्य के उदय से यहां यह वृषभांक राजा भया। और कौशांबी का राजा अतिबल का जीव जो देव भया था सो भी आरण स्वर्ग से चय कर यहां इस वृषभांक राजा के, यह कनकध्वज नामा पुत्र भया, इस भांत यशोभद्र मुनिराज के मुखरूप चंद्रमा से उत्पन्न भया जो सत्यार्थ वचन रूप अमृत उसका नृपादिक सहित पानकर, और आयु के अंत समय सम भावों से सुकुमाल की सर्वार्थ सिद्धि विमान विषे भली शुभगति जान कर सो आरत को छोड़ आनंद सहित संवेग को प्राप्त होय सुकुमाल का इस भांत प्रशंसा करती भई अहो, इस अत्यंत धर्मात्मा सुकुमाल ने यह देवों को भी दुर्लभ ऐसी भोग संपदा का शीघ्र ही त्याग किया, और भगवती दीक्षा अंगीकार कर ऐसा घोर तप किया जो किसी से बन न आवे, और तीन दिन पर्यंत स्यालनी कृत ऐसे घोर उपसर्ग को जीत कर समभावों

से प्राण छोड सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त भया, ऐसे सुकुमाल की अत्यंत प्रशंसा कर वह सुकुमाल की माता मोहरूपी विष का वमन कर, संसार सपदा गृह आदक विषे परम संवेग को पाय कर और पुत्र संबंधी अपने मोहकी निंदाकर, यह यशोभद्रा तप ग्रहण करने को उद्यमी भई। उस समय सुकुमालकी चार प्राण प्रिया जो गर्भवती थीं उनको सर्व घर संपदादिक सोंप कर अवशेष अठाईस पुत्र वधु और और बहुत बंधु जनों सहित सेठानी यशोभद्रा तुरत ही बाह्य अभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर मुक्ति के अर्थ दीक्षाग्रहण करती भई। और राजा वृषभांक ने भी इस यशोभद्र मुनिराजके समीप अपने पूर्व भव को सुनकर परम वैराग्यकी सामर्थ्यसे अपनेछोटे पुत्रके अर्थ राज संपदा देकर संसार देहभोगोंसे विरक्त ऐसे बहुत राज पुत्रों सहित और कनकध्वज सहित समस्त संपदाको त्यागकर मन बचनकाय की विशुद्धता से मोक्ष के अर्थ मुक्ति की माता समान जो भगवती दीक्षा वह अंगीकार करी॥

अथानंतर–वह समस्त मुनि राज परम तप करते और श्रुति का अध्ययन करते और पर का विचार करते और नाना देशों में विहार करते और निर्जन बन विषे निवास करते, और परमदीक्षा को पाळते हुए, मोक्ष मार्ग विषे स्थित होते भये। सो इन समस्त योगी मुनिराजों में १ सुकुमाल का पिता सेठ सुरेंद्रदत्त, २ सुकुमाल का मामा यशोभद्र ३ उज्जयिनी का राजा वृषभांक ४ और वृषभांक का पुत्र कनकध्वज यह चार महामुनि चरम शरीरी तद्भव मोक्ष

गामी थे। सो शुक्ल ध्यान रूपी खड्ग से बलात्कार समस्त कर्म रूपः वैरी का घात कर इंद्रादिक देवों से पूज्यता पाय, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक ज्ञान, क्षायक दर्शन, अनंत वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व अगुरु लघुत्व, और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों को पाय कर अनुपम अनंत सुख कर परिपूर्ण ऐसे परमधाम को प्राप्त भये, और शेष समस्त मुनिराज अपने अपने तपश्चरण के अनुसार सौधर्म स्वर्ग आदि सर्वार्थ सिद्धि पर्यंत उत्तम पद को प्राप्त भये और सुकुमाल की माता यशोभद्रा आर्यिका तीव्र तप के प्रभाव से अच्युत कल्प को प्राप्त भई, और कई एक आर्यिका दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन के प्रभाव से सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत युगल विषे बडी ऋद्धि के धारक महर्द्धिक देव भये, और कई एक आर्यिका तप के प्रभाव से सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत कल्पविषे अत्यंत रूपवती मनोहर देवांगना भई ॥

अथानंतर–सो सुकुमाल मुनिराज का जीव पुण्य के उदय से सर्वार्थ सिद्धि विमान विषे उपपाद शिला के मध्य रत्न मयी कोमल शय्या वि` अंतर मुहूर्त कर संपूर्ण नवयौवन को पाय दिव्य वसन भूषण और पुष्पमालादीप्त कांत आदि कर विभूषित कहिये शोभायमान ऐसा अहमिंद्रदेव उस उपपाद शय्या से उठकर मानो साक्षात् पुण्य का पुंज ही है। वहां ऐसे अहमिंद्र देवों को नैनों से अवलोकन कर अवधि ज्ञान के प्रभाव से पूर्व भव संबंधी समस्त प्रचुर तप का फल जानकर और साक्षात् तप

का फल देख कर धर्म विषे दृढ बुद्धि धारण करता भया, उस पीछे अत्यंत पुण्यात्मा वह अहमिंद्रदेव धर्म की रुच्छी के अर्थ उत्तंग,दिव्य रत्नमणिमय सुवर्णमय जिन मंदिर विषे गया, वहां अद्भुत तेज के पुञ्ज जो श्रीजिनदेव के प्रतिबिंब उनको प्रणाम कर और परम पुनीत पूजाके द्रव्य करके भक्ति युक्त आठ प्रकार पूजन विधान कर अहमिंद्रों कर सहित सो पुण्यात्मा पुण्यका उपार्जन करता भया, उस पीछे वह अहमिंद्र देव अपने निवास विषे जायकर पूर्वभव विषे उग्र उग्र तपकर उपार्जन करी ऐसी जो समीचीन विमान आदि समस्त अपनी संपदा तिसको अंगीकार करता भया। और अपने निवास विषे तिष्ठता यह अहमिंद्र देव त्रैलोक्यवर्ती समस्त जिनबिंब और जिन मंदिरों को अपने अवधिज्ञान से अवलोकन कर प्रणाम करता भया, और अपने स्थान में तिष्ठता ही यह अहमिन्द्र सदाकाल पंचकल्याणक विषे श्री जिनेंद्रतीर्थंकर देवों को सिर नवाय भक्ति सहित स्तुति नमस्कारादि करे है, और गणधरादि महंत केवलियों के केवल ज्ञान निर्वाण कल्याण के काल में यह अहमिंद्र देव प्रणामादि करे हैं, और वहां कोई अवसर विषे विना बुलाये स्वयमेव अपनी इच्छा से आये ऐसे जो अहमिंद्र देव तिन कर सहित सो अहमिन्द्र धर्म की करणहारी समीचीन धर्म गोष्टी करे है, इत्यादिक नाना प्रकार पुण्यका उपार्जन करता ऐसा वह अहमिंद्र देव पूर्व पुण्य के उदय से प्रविचार रहित अनुपम सुखों को निरंतर भोगवे है, और स्फाटिक मणी मय विमान विषे स्वभाव ही कर परम सुंदर अति मनोहर ऐसे महल वन पर्वता-

दिक विषे प्रीति से अहमिंद्रों कर सहित यथेच्छ क्रीडा करता और सदाकाल धर्मध्यान का चिंतवन करता वह अहमिंद्र देव सुख सागर के मध्य मग्न रहे है। इन अहमिंद्र देवों के स्वभाव ही कर परम रमणीक ऐसा अपना मनोहर शुभ स्थान विषे जो रति होय है सो रति और स्थान विषे कहीं ठौर कदाकाल भी नहीं होय है, इससे अपने परम उत्तम मनोहर स्थान को छोड कर अन्य स्थान विषे अहमिंद्र देवोंका गमन कभी भी नहीं होय है, और वह समस्त अहमिंद्र देव कैसे हैं समान ऋद्धि कर शोभायमान हैं, और जिन के हीनाधिक पना नहीं, सब ही समान पद कर सहित हैं। और जिन के लेश्या की विशुद्धता अवधिज्ञानका प्रमाण पांचों इंद्रियोंके सुख और भोगोप भोग संपदा समानहै, सर्वही अहमिंद्र देव मंदरागी धर्मध्यान विषे सावधान परमस्नेह कर संयुक्त हैं। और जिनके परस्पर ईर्ष्या नहीं, मान बडाई नहीं और विकार कर रहित, सरल परिणाम के धारक, परम प्रवीण परम सौम्यरूप, सादृश्य धर्म के फल से सर्व ही अहमिंद्र देव समान हैं, यहां मैं ही इंद्र हूं, मैं ही अहमिंद्र हूं, यहां मेरे सिवाय और कोई दूजा इंद्र नहीं है; ऐसे वह समस्त ही अहमिंद्र देव अपने उत्तम पद संबंधी महान सुख को अपने अपने हृदय विषे प्राप्त होय हैं, और स्वर्गविषे अनेक अप्सराओं के सहित केलि करते जो सुख होय है उस से असंख्यात गुण सुख अहमिंद्र देवों के पैंड पैंड में है, कैसा है अहमिंद्र देवों का सुख बाधा रहित है, और उपमा रहित है, और स्वात्मज कहिये अपने आधीन है, पराधीनता रहित है, और

प्रविचारता कर रहित है अर्थात् प्रविचार नाम पांचो इंद्रियों के वियोग का है। सो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, यह भवनत्रिक और पहला सौधर्म स्वर्ग दूसरा ईशान इन चार स्थान के देवों के तो मनुष्य स्त्री के समान मैथुन के रतिकाल विषे काम सेवन है, और तीसरा स्वर्ग सनत्कुमार चौथा महेंद्र स्वर्ग के देवों के देवांगना के स्पर्शमात्र ही भोग सुख है, और पांचवां ब्रह्मा, छठा ब्रह्मोत्तर, सातवां लांतव, आंठवां कापिष्ट इन चारस्वर्ग के देवों के देवांगना का रूप के अवलोकन मात्र ही भोगसुख है। और नवमा शुक्र, दशवां महाशुक्र, ग्यारवां सतार, बारवां सहस्रार इन चार स्वर्ग के देवों के देवांगना का बचन श्रवणमात्र ही भोग सुख है, और तेरवां आनत चौदवां प्राणत, पंद्रवां आरण सोलवां अच्युत इन चार स्वर्गों विषे देवों के केवल मन विषे विचार मात्र ही भोग सुख है, और नवग्रैवेयक, नव अनुदिश, पांच अनुत्तर विषे देवांगना नहीं, उस से समस्त अहमिंद्रों के मनका भी विकल्प नहीं। परम ब्रह्मचारी सदा प्रविचार रहित अप्रविचार हैं, कैसे हैं अहमिंद्र देव कामज्वर करके रहित हैं, संसार विषे परिपूर्ण पुण्य के उदय से समस्त दुःख रहित जो सर्वोत्कृष्ट सुख हैं सो संपूर्ण सुख सर्वार्थ सिद्धि निवासी अहमिन्द्र देवों के हैं। इत्यादिक सुख विषे भले प्रकार तल्लीन वह अहमिंद्र देव कैसा है तेतीस सागर की है आयु जिसकी और दिव्य मनोहर लक्षणों कर लक्षित है, और तेतीस हजार वर्ष व्यतीत भयें सर्व इन्द्रियों के सुखदायी अमृतमयी दिव्यमानसिक आहार को आस्वाद करे, और तेतीस पक्ष

के साढे सोला मास व्यतीत भये रंचमात्र एक स्वास लेवे है, और अपना अवधि ज्ञान कर त्रिलोक वर्ती समस्त मूर्तिक द्रव्यों को जाने है, और अपना अवधि ज्ञान का क्षेत्र पर्यंत विक्रिया करने विषेसमर्थ ऐसी जो विक्रया रिद्धि उसकर शोभायमान है। और उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या कर सहित है। और निरंतर धर्म ध्यान विषे तल्लीन है। और सात धातु, सात उपधातु मैल पसेव रोगादिक कर रहित दिव्य स्फटिक मणि समान उज्वल है, विक्रिय देह को धारण करे है, और एक हाथ प्रमाण ऊंचा है मनोहर काय जिसका और नेत्रों को जो उन्मेख कहिये टिमकाव उस कर रहित है, अर्थात् नेत्र टिमकारे नहीं, और आदि शब्द से शरीर की छाया नहीं पड़े है, और सुख के समुद्र के मध्य तिष्ठे हैं और समस्त अनिष्ट के संयोग कर रहित है, और इष्ट के वियोग करके रहित है, और समस्त दुःख करके रहित ऐसा वह अहमिंद्र देव इस सर्वार्थ सिद्धिविमान विषे सुख सहित स्थिति करता भया सो यह सुकुमाल का जीव अहमिंद्र देव इस सर्वार्थ सिद्धि विमान से चयकर इस ही जंबू द्वीप भरत क्षेत्र आर्यखंड विषे क्षत्रियादिक तीन उत्तम कुलों में जन्म पायकर और धर्म रत्न के प्रभाव से समस्त कर्मों का नाश कर निश्चय से मोक्ष जायगा, इस भांत शुद्ध निर्दोष चारित्र के प्रभाव से सो अहमिंद्र देव अनुपम सारभूत और दुःख के लेश मात्र कर भी रहित और समस्त विकार से रहित ऐसे परमसुख भोगवे है। यहां तक सुकुमाल मुनि का वर्णन संपूर्ण हुआ ॥

अथ धर्मोपदेश ॥

अब इस ग्रंथ के अंत विषे गूंथ रचिता श्री सकल कीर्ति आचार्य यह गूंथ रचने का तात्पर्य जो पाप का फल खोटी योनियों में महाघोर दुःख सहते हुए भ्रमण करना और धर्म का फल स्वर्गादिक में देवांगनाओं सहित महान सुख भोगना वर्णन कर जगत के जीवों पर दया भाव से उन के कल्याण के निमित्त धर्मोपदेश देवें हैं कि हे संसार में भ्रमण करने वाले जीव हो,इस धर्म के फल से वह नाग श्री का जीव श्री सुकुमाल होय सर्वार्थ सिद्धी को प्राप्त हुवा। ओर इस धर्म के सेवन से ही उसके माता पिता आदि को उत्तम सुखों की प्राप्ति हुई। सो तुम भी ऐसे जान कर उत्तम सुख की प्राप्तिके अर्थ यहां चारित्र की शुद्धता कर सर्वज्ञ भाषित धर्मका सेवन करो। धर्म जो है सो अनंत गुणों का दायक है और समस्त दोषों का नाशक है,और ध्यानी मुनिराज धर्म ही का आश्रय करे हैं,और धर्म कर ही मोक्ष का सुख भले प्रकार साधिये है और धर्म से ही धर्मात्मा जीव अत्यंत उत्तम विभूति को पावे है, और धर्म से ही शोभायमान रूप संपदा प्राप्त होय है, और धर्म से ही संयमका लाभ होय है, और धर्म से ही,महाघोर उपसर्ग का विजय होय है,और धर्म से ही एक भव में निर्वाण संपदा की करणहारी ऐसी अनुपम परम उत्कृष्ट सर्वार्थ सिद्धि की संपदा पाइये है, इस संसार विषे धर्म बिना उत्तम संपदा कहां से होय और पांचों इंद्रियों के मनोज्ञ विषयों का लाभ धर्म बिना कहां से होय।और समस्त लोगों

के मध्य मानपना धर्म बिना कहां से होय,और धर्म बिना अति मनोग्य रमणी का लाभ कहां से होय, और धर्म बिना यहां अपने वांछित अर्थ का लाभ कैसे होय,और यहां धर्म बिना अपने मन की शुद्धता कहां से होय, और धर्म बिना उत्तम धर्म जो निजात्म शुद्ध धर्म उसका लाभ कहां से होय,और धर्मबिना यहां यथाख्यात संयम का लाभ कहां से होय,और धर्म बिना इंद्र अहमिंद्र, तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव, प्रतिवासुदेव, काम देव आदि उत्तम पदों का लाभ कैसे होय, और धर्म बिना यहां सत्पुरुषों के बाह्य अभ्यंतर वैरियों का विजय कहां से होय,इस भांत जानकर भो वुध जन हो,तुम आत्म हित के अर्थ सर्वज्ञ भाषित अनुपम धर्म का सदाकाल बडे यत्न से मन वचन कायकी शुद्धता कर निरंतर सेवन करो,कैसा है धर्म ? समस्त संसार के दुःखों का घातक है और समस्त मनोवांछित अर्थ का प्रकट करन हारा है,और परमार्थ भूत आत्मिक सुख का अद्वितीय एक कारण है ऐसा जान कर मैं भी धर्म के तांई बारम्बार नमस्कार करूं हूं। और धर्म ही विषे निरंतर लगा हूं । धर्म के उपार्जनके वास्ते ही मैंने (सकलकीर्ति नामा आचार्यने) इस सारभूत चरित्र के रचनेका मिसकर अत्यंत धीर बीर श्रीसुकुमाल मुनि की यह स्तुतिकरी है कैसे हैं सुकुमाल महामुनि ? तीन भवनोंकरके वंदनीय हैं। सो वह श्री सुकुमाल मुनी मेरे कर्मरूप वैरीके विजय विषयिकसमस्त उपद्रवोंका घात करो। अपना अद्भुत वीर्य मुझे भी दो, और समस्त अशुभ कर्मों का विनाश कर ऐसा समाधि मरण और अपने समस्त उत्तम क्षमा

दिक गुणों के समुदाय मुझे दो, यही मेरी उनसे प्रार्थना है, और अल्प श्रुत का धारक ऐसा जो मैं सकल कीर्ति नामा मुनि मुझ कर किया जो यह सुकुमाल चरित्र इस में समस्त अज्ञान संबंधी दोषों के घातक ऐसे बहुज्ञानी मुनिराज शुद्ध करो और इस सुकुमाल चरित्र की रचना विषे जो मैं प्रमादके बस कर अक्षर, स्वर,संधि तथा मात्रा और पदों के जोड़ने विषेजो मैं कुछ चूककरी हो सो समस्त मेरा अपराध हे महा भगवती परमेश्वरी जिन वाणी तुम क्षमा करो, और इस सुकुमाल चरित्र को जो मुनिराज मोक्ष की सिद्धी के अर्थ पढे हैं, सो मुनिराज समस्त श्रुति समुद्र का पार को पायकर परम पद का आश्रय करे हैं और जो निपुण ज्ञानी जन इस सुकुमाल चरित्र को परम सुख के लाभ के अर्थ सुने हैं सो पुरुष तुरत ही रागदोष का नाश कर परमवीत रागधर्म का सेवन करे हैं। कैसा है यह चरित्र वृष कहिये मुनिधर्म और श्रावक धर्म इन दोनों का बीज कहिये मूल कारण है। और कैसा है यह चरित्र समस्त राग भाव का विनाशक है। और निर्मल समस्त सुखों की खान हैं। और अब मैं पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करूं हूं। कैसे वह पंच परमेष्ठी भगवान् वृषभ देव आदि वर्धमान जिन राज पर्यंत चौबीस तीर्थंकर कर अनंत गुणों के निवास समस्त लोक के परमेश्वर महेश्वर ऐसे अर्हंत परमेष्ठी और समस्त कर्मों कर रहित परमपद को प्राप्त भये परमपूज्य ऐसे अनंत सिद्ध परमेष्ठी और शिव के अभिलाषी समस्त मुनिराजों के हितकारी ऐसे आचार्य परमेष्ठी और द्वादशांग श्रुति समुद्र के पारगामी पच्चीस

गुणों कर विराजमान ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी और आठबीस मूल गुण के धारक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता रूप मुक्ति मार्ग के साधक ऐसे सकल साधु परमेष्ठी ऐसे यह पंच परमेष्ठी परमोत्कृष्ट तपके फलको प्राप्त भये। सो पंच परम गुरु इस सुकुमाल चरित्र की परिपूर्णता विषे मुझ सकल कीर्ति मुनिराज का और तुम समस्त भव्य जीवों को पचकल्याणक रूप परम मंगल प्रकर्षपने कर देवें ऐसे यह प्रार्थना रूप तथा आशीर्वाद रूप परम मगल शास्त्र की समाप्ति विषे आचार्य ने किया है। और निर्मल गण रत्नों का निधान तीन लोक विषे अद्वितीय दीपक समान समस्त दोषों कर रहित कल्याण सुख की और कर्मक्षय की मूल कारण चार ज्ञान के धारक मुनिराज कर पूजनीक ऐसी यह जिनवाणी सम्यग्ज्ञान रूप परम पवित्र तीर्थ भूतल विषे अद्विनीय अतिशय पने कर जयवंतो प्रवर्तो, अंत विषे ग्रंथ रचिता ने यह जिन बाणी को महिमा वर्णन कर अंत विषे यह मंगल किया है ॥

इत्यचार्य श्रीसकल कीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ, उस की देश भाषामें वचनिका विषे सुकुमालकी माता यशोभद्रा के दीक्षा का गृहण और यशोभद्र, सुरेंद्रदत्त, बृषभांक कनकध्वज इन का मोक्ष गमन और अहमिंद्रदेव की विभूति का है वर्णन जिस में ऐसा नवम सर्ग समाप्त भया।

॥ इति सुकुमाल चरित्रं संपूर्णम् ॥



Digambra Jain Religious Grantha Series No. 6

मूल ग्रन्थ रचिता श्री सकलकीर्ति आचार्य्य

इति सुकुमालचरित्र

संवत् १९६७। सन् १९११। वीर संवत् २४३७।

भाषा वचनिका रचिता पण्डित नाथूलाल जी

बाबू ज्ञानचन्द्रजैनी लाहौर निवासीने छपवाया]

[मूल्य १) रुपया।